महापंडित राहुल सांकृत्यायन

तिब्बत के अनोखे रीति रवाज तथा खोजपूर्ण यात्रा का मनोरंजक वर्णन



त यात्रा

लेखक

## महापंडित राहुल सांकृत्यायन

—:❀:—


प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला,

दारागंज, प्रयाग


—:❀:—


प्रथम संस्करण १५०० ]     १९३७     [ मूल्य १।)

# प्राक्कथन

मैंने अपनी अिस यात्रा को तिब्बत से लौटते ही प्रेस में देदिया था, किन्तु कुछ कारणों से ३६ पृष्ठ तक छपकर काम रुका रहा; और अब तीसरी वार तिब्बत से लौटने के वाद यह पुस्तिका पाठकों के हाथ में जा रही है, १२८वें पृष्ठ के वाद दो तीन पृष्ठ लुप्त हो गये हैं, अिसलिये वहाँ सिलसिला कुछ टूटा सा मालूम होगा।

प्रूफ देखने में पंडित अुदयनारायण त्रिपाठी अेम० अे०, साहित्य-रत्न से वहुत मदद मिली, अिसके लिये अुन्हें धन्यवाद देता हूँ। यात्रा के अन्तिम दो अध्याय "सरस्वती" में निकले थे। चित्र "सरस्वती" तथा "प्रवासी" (वंगला) में प्रकाशित हुये थे। ब्लाकों के देने के लिए हम दोनों पत्रों के अभारी हैं।

पटना<br>६–३–१९३७ राहुल सांकृत्यायन

# विषय-सूची



## परिशिष्ट



---

## चित्रसूची

१० स-क्य—नृत्य
११ स-क्य—मन्त्री और डोनी-छेन्-पो
१२ स-क्य—दीर्घायुश्री देवी
१३ स-क्य—दीर्घायुश्री देवी नौकरों के साथ
१४ सूत कातना
१५ स-क्य—माँ बेटी
१६ स-क्य—अचा दिकीला
१७ स-क्य—दम्पती
१८ स-क्य—तालपत्र की पोथियाँ
१९ डोङ्-मो-ला—जोत् पर
२० मब्-जा—एक स्तूप
२१ तिङ्-री—कस्बा
२२ ते-ग्ला—शिक्षा सपत्नीक
२३ लङ्-कोर्—गाँव
२४ थोङ्-ला—चमरी या याक्
२५ थोङ्-ला—जोत पर
२६ थोङ्-ला—बर्फीली नदी
२७ छोक-मम् का द्वार
२८ डाङ्—झूलेवाला पुल
२९ चौतारी—नेपाली घर
३० नेपाल—राजगुरु पंडित हेमराज शर्मा
३१ नेपाल (पाटन) बोधगयामंदिर; भूकम्पध्वस्त
३२ नेपाल ( पाटन ) सुनयश्री की मूर्ति, भूकम्पध्वस्त
३३ नेपाल—जेनरल केसर शम्सेर



——————

शान्ति-रक्षित

पंडित गयाधर

# मेरी तिब्बत यात्रा

## प्रथम खण्ड

### ल्हासा से उत्तर की ओर

प·या (फेन्-बो)
३०-७-३४

प्रिय आनन्द जी,

कलिम्पोङ् मे ल्हासा तक वही पुराना रास्ता था, इसीलिये उसके बारेमें विशेष लिखने की आवश्यकता न थी। ल्हासामें दो महीना ग्यारह दिन रहे। इस बीच में "विनयपिटक" के अनुवाद तथा "विज्ञप्ति" के उस भागको संस्कृत में करने के अतिरिक्त दो महत्त्वपूर्ण तालपत्रके संस्कृत-ग्रन्थों—'अभिसमयालंकार-टीका' और 'वादन्याय-टीका' की खोज पानेका सौभाग्य मिला। दोनों पुस्तकोंके फोटो ले लिये। एक कापी अपने पास रख, निगेटिव्-सहित एक-एक प्रति पटना श्री० जायसवालजी के पास भेजदी है। अब की बार यहाँ भिक्षुओं तथा गृहस्थों के नाना प्रकारके वस्त्र आभूषण भी संग्रह कर रहा हूँ—बहुतकुछ कर चुका हूं। तिब्बत में चित्रकला पर एक लेख लिख चुका हूँ, जो किसी हिन्दी-पत्र में भेज दूंगा—सचित्र। साथ ही यहाँके चित्रकारोंके सभी रंग, उनके बनाने का ढंग, तूलिका आदिका संग्रह किया है। तिब्बती भाषा की दूसरी और तीसरी पुस्तकों को

छापने के लिये कलकत्ते भेजा था, रास्तेमें उसी थैले में किसीने शराब रख दी, जिससे भीगकर पुस्तकके कितने ही भाग अ-पाठ्य होगये। विनय-पिटकके हिंदी-अनुवादको भी आदमीके हाथ ही ग्यांची— जहांकि अंग्रेजी डाकखाना है— भेजा है। देखिये, सकुशल पहुँच जाये, तब नहीं तो योगिनी, डाकिनीके मुल्कमें कहीं फिर बोतल लुढ़क गई, तो वह भी 'राम-राम सत्य'। अपने रामने तो कसम खा रक्खी है कि यदि लिखी हुई कोई पुस्तक एक बार गुम या नष्ट हो जाय, तो फिर उसमें हाथ नहीं लगाना।

हाँ, तो फेम्बो ( फेन्-बो, पुराना फन्-युच् ) की यात्राकी क्यों जरूरत पड़ी ? दसवीं सदी से तेरहवीं सदी तक कितने ही अच्छे अच्छे विद्वान् इसी प्रदेशमें हुए थे। मेरे एक विद्वान् मित्रका कहना है कि फेम्-बो हमेशा तंत्र-मंत्रसे बग़ावत करता रहा है। रावणकी लंकामें विभीषण के समान दीपंकर श्रीज्ञानके प्रशिष्य पंडित श-र-बा तो मंत्र-तंत्रके इतने कठोर विरोधी थे, कि पीछे दूसरों को हलफ़ लेकर गवाही देनी पड़ी, कि श-र-बा मरने के बाद जरूर नर्कमें गया। इतने से भी फेम्बो हमारे जैसे नास्तिकोंके लिये चा-छेन्-पो (परम पवित्र) ठहरा किन्तु उतने ही से शायद ईं-जानिब इधर तशरीफ़ न लाते। मालूम हुआ कि इधर दसवींसे तेरहवीं शताब्दी तक के कितने ही विहार हैं, जिनमें रे-डिङ् में तो निश्चित ही थोड़ीसी तालपत्र की पुस्तकों के होने की बात बतलाई

गई है, और सम्भावना औरोंमें भी है। वस्तुतः यही कारण है इधर आनेका।

जब पुस्तकके लिये आना था, तो उसके लिये विशेष तय्यारी करनी ज़रूरी थी। यद्यपि सभी पुराने मठोंके लिये पुस्तकें दिखाने आदिके कामके लिए भोट सरकारसे चिट्ठी मिलनेवाली है, किंतु अभी उसमें कुछ देर थी, इसीलिये यह दो सप्ताहकी यात्रा उसके बिना ही करनी पड़ रही है। हां, भोटके वर्तमान राजा रेडिङ्-रिम्पो-छेने एक पत्र अपने रे-डिङ्-मठके लिये देदिया है और शिकमकी महारानीके भाई र-क-सा-कुशोने तग्-लुङ्के लिये चिट्ठी देदी है। इसी तरह दो-तीन और चिट्ठियां मिल गई हैं। चिट्ठियोंके बाद दूसरा प्रश्न था साथी-सवारीका। छु-शिन्-शरके स्वामी साहु पूर्णमानने अपने छ खच्चरों तथा खच्चरवाले को दे दिया। सवारीका प्रश्न तो इस प्रकार हल होगया। रहा साथियों का— इसके सिवा एक फ़ोटोग्राफ़रकी भी आवश्यकता थी। हमारा रोलैफ्लेक्स कैमरा पुस्तकें छापनेसे इंकार करता हैं। सौभाग्यसे ल्हासाके फ़ोटोग्राफ़र श्री लक्ष्मीरत्नने चलना स्वीकार कर लिया। किंतु अभी एक और साथीको जैसे बने इन्-ची-मिन्-ची (= ज़रूर ही) ही ले जाना था, क्योंकि हम ऐसे प्रदेशमें जा रहे हैं, जहां संख्या और पिस्तौल-बन्दूक ही हमारी रक्षा कर सकती हैं। हमारे खच्चरोंके सर्दार सो-नम्-ग्यल्-म्-छन (= पुण्य-ध्वज) खामूके (पूर्वीय तिब्बत) के हैं, जहांकी कहावत है—तुम अपने

ही भरोसेपर जी सकते हो। उनपर पूरा भरोसा है। अपने राम तो हथियार बांध ही नहीं सकते। हां, जो चौथे साथी मिले, उनका जन्म अम्-दोका है, जहांपर भी गोली-गट्ठा लेकर नब्बे-सौ आदमी मिलकर ही मंज़िल तै कर सकते हैं, किंतु वे भी तलवारके धनी नहीं हैं। गेन्-दुन्-छोंं-फेल् (= संघ-धर्मवर्धन) यही उनका नाम है— अच्छे चित्रकार हैं तथा इतिहास और न्याय-शास्त्रमें अच्छा प्रवेश रखते हैं। कह-सुनकर उनके कंधेसे भी एक सात गोलीका पिस्तौल एवं कार्तूसोंकी माला लटकाई गई। श्री लक्ष्मीरत्न को लोग नाती-लाके नामसे जानते हैं। उनकी नानी नाती कहा करती थीं, फ़िरिश्तोंने ल्हासा पहुंचनेपर इस नामको यहां पहुंचा दिया, फिर (ला = जी) जोड़कर भोट-वासियोंने उन्हें नाती-ला बना दिया। बुढ़ापे तक अब उन्हें नाती-ला ही होकर रहना है। हां, तो नाती-लाको बहुत एतराज़ था— एक छोटासा सात गोलीका तमंचा बांधने पर। उनका कहना था— हमारी छाती पर बराबर मि-टि-कु (= ग्यारहवीं शताब्दीके आचार्य स्मृति ज्ञानकीर्तिके नामसे फ़र्ज़ी बनवाई मिट्टीकी छोटी मूर्ति) रहती है। हमारे ऊपर गोली नहीं लग सकती। कहनेपर उन्होंने पिस्तौल द्वारा परीक्षा करानेसे इन्कार कर दिया। ख़ैर, किसी तरह वे भी पिस्तौल लटकानेको राज़ी हुए।

सो-नम्-ग्यल्-म्-छन् ( उच्चारण सोनम् ग्यंर्ज ) ने कहा कि १८वीं तिथि (छठे मासकी २० जुलाई) ही को चलना अच्छा

है, बीसको थम्-च (= शून्य) आजायेगा, और आगे भी साइत अच्छी नहीं। इस प्रकार आज ८॥ बजे तय्यारी करते-कराते ल्हासासे निकले। साथमें फेम्बोमें चराईके लिये छु-सिन्-शर्के बाकी ६ खच्चर तथा उनका दूसरा आदमी था।

आजकल वर्षाऋतु है। भूले-भटके कितने ही बादल हिमालयके इस पार भी आ पहुंचते हैं। और मैदान और पहाड़ जिधर देखो उधर ही हरी मखमली— छोटी छोटी घास— बिछी हुई है। भोट-देशीयोंका इस सूपङ् (= हरियाली) पर नाज़ करना बजा है। तीन मासके लिये तो यहांकी पर्वतमालायें अद्भुत सौन्दर्य धारण कर लेती हैं। हरी घासोंके अतिरिक्त कहीं-कहीं पीले-नीले फूल भी फूले दिखाई पड़ते हैं। ल्हासाके बाद पहिला घर तब्-चीका आया। यहीं भोट-सर्कारकी टकसाल तथा सैनिक-कार्यालय है। पहिले सिपाही भी थे, किंतु इधर अनावश्यक होने से उन्हें छुट्टी मिल गई है। शायद तुमने सुना होगा कि ल्हासामें जलसे बिजली भी पैदा की जाती है। पैदा करने वाले चल बसे, नहीं तो उनका इरादा था ल्हासाको विद्युत्से आलोकित करनेका। चीन आ ही रहा है, और आ रहे हैं पण्-छेन-रिम्पो-छे (= टशीलामा) भी। इसलिये कोई आश्चर्य नहीं, यदि बिज्जु देवीका क़दम ल्हासामें पहुंच जाये। खैर, अभी तो इस बिजलीसे टकसाल तथा तब-चीके कार्यालयोंमें ही प्रकाश हो रहा है।

तब्-चीसे आगे पहाड़की जड़में हरे-भरे खेतोंके बीच एक घर मिला। फिर दाहिनी ओरकी कोनेवाली उपत्यकामें सहस्रों हरेभरे खेतोंकी सीढ़ियोंको छोड़ते, हम बांई ओर नदी पार हो हल्की चढ़ाई चढ़ने लगे। एक फलहीन, किन्तु सुन्दर, बाग आया और तब्-चीसे तीन मील आनेपर बिजली-बत्तीकी मा (= लोक्-शुइ-आ-मा) हमें मिली। एक मामूलीसे घरमें पानी द्वारा पहिया घूम रहा है, और बिजली पैदा हो रही है। पानी तो इतना काफ़ी है कि उससे सारे ल्हसाको रोशन करके भी बिजली बच रह सकती है। उससे ज़रा ही ऊपर पानी पारकर कुछ नये, किंतु टूटे-फूटे, मकान मिले। मालूम हुआ, बिजली-देवीके लिये पहिले अच्छे-अच्छे मकान बने थे, किन्तु उन्हें वे पसंद न हुए और वे नष्ट होगये, और अब उनके लिये टूटी मंड़इया मिली है। असलमें तो चाहिए था ज्योतिषीको फांसी दे देना क्योंकि उसने ऐसी बुरी साइत बताई। कुछ दूर और ऊपर चढ़नेपर एक वृक्ष रहित आखिरी गांव मिला, और फिर जोत् (Pass) तथा उससे चार-पांच मील इस पार एक भी गांव नहीं है। अब चढ़ाई भी कुछ कठिन थी और ऊंचाईके कारण हवाके पतलेपनसे जानवरोंका दम भी अधिक फूल रहा था। उपत्यकाऐं और उनकी बेटी-पोतियां सभी घन-नील-वसना थीं। सिर्फ एक ओर बेरास्ते चलती पचास-साठ चमरियां (याक) काला दागसा बन रही थीं। यद्यपि दूरदूर पर सफेद भेड़ोंके झुंड चर

स-क्य—अचा दिकी ला

तिब्बत—माँ-बेटी
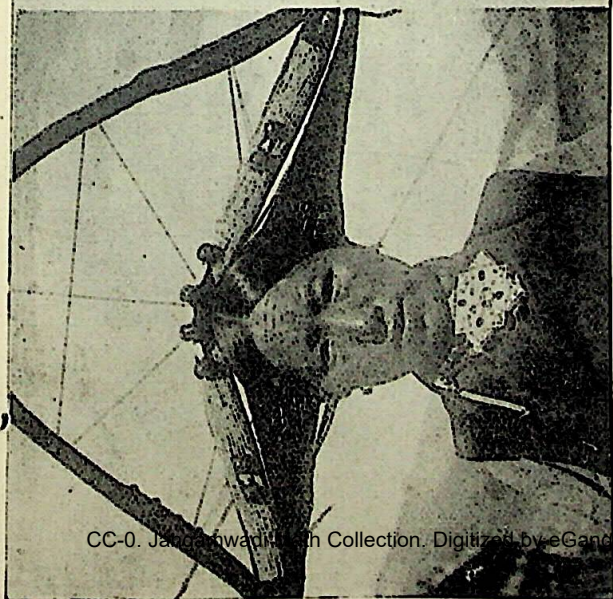
तिब्बत—रमणी
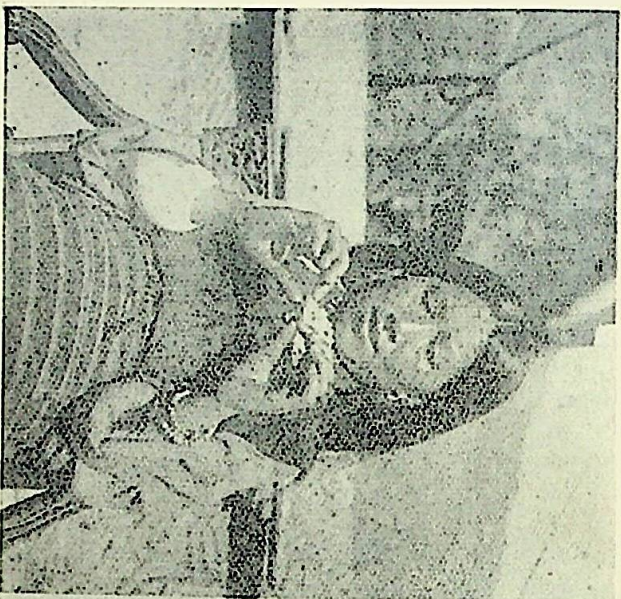
स-क्य—माँ-बेटी
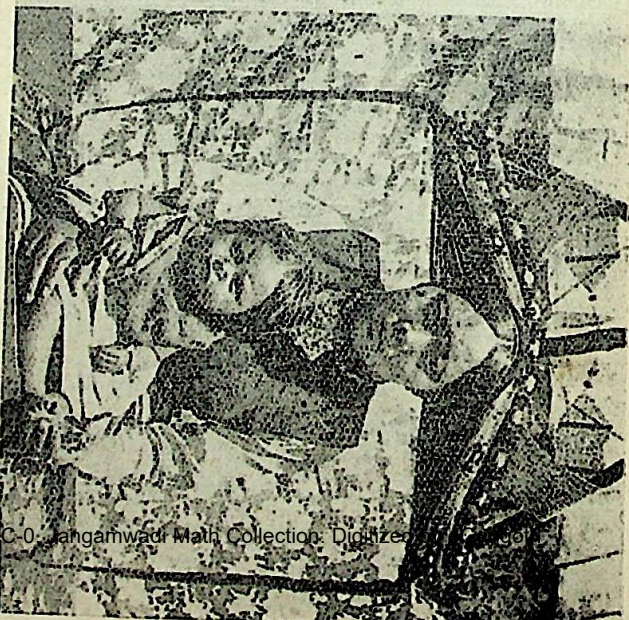
रहे थे, किन्तु न हिलने डुलने के कारण वे जहां-तहां पड़े पत्थर ही जान पड़ते थे। पिछले वर्ष दलाई लामा फेम्बो पधारे थे, इसलिये रास्ता बनाया गया था— बल्कि हमारे दोस्त कादिर भाईके कहनेके मुताबिक तो उसपर मोटर चल सकती है। आपको शायद ल्हासामें दलाई लामाके लिये तीन मोटरोंका आना मालूम है। उसी अपशकुनसे—कुछ लोग कहते हैं—दलाई लामाको शरीर त्याग करना पड़ा, और उनके कृपापात्र कुम्-मे-लाको, जो बिजली-मोटर जैसी खुराफातें सोचा करते थे, सर्वस्वसे हाथ धो एक कोनेमें निर्वासित होना पड़ा।

रास्ता कुछ तो अच्छा ज़रूर है। गो-ला (यही इस जोत्का नाम है) के ऊपर चढ़कर पीछेकी ओर मुड़कर देखनेपर ल्हासा नगरी सुदूर दिखाई पड़ी। दूरबीनसे देखनेपर वह कुछ और स्पष्ट हुई, किन्तु उससे भी विचित्र, दूर क्षितिजके अन्त तक, सहस्रों पर्वत-शिखर थे जो तिब्बत देशको सहस्रशीर्षा पुरुष बना रहे थे। दूसरी ओर देखने पर नीचेकी उपत्यकामें अनगिनत खेत बतला रहे थे, कि फन्-युल वस्तुतः फन्-युल् (= हितका देश) है।

अब हरी उतराई शुरू हुई। जोत्पर हम डेढ़ बजे पहुंचे थे, तबसे ४॥ बजे तक उतराई ही उतराई रही। बिना वृक्षों के कुछ घर छोड़कर हम और नीचे उतरे, और पा-या पहुंच गये। हमारे साथी संघ-धर्म-वर्धन तभीसे दिमाग लड़ा रहे हैं कि पा-याका

अर्थ क्या है। किन्तु हमारा कहना है, पा-याका अर्थ पाया ही है— इतनी मेहनत से जो पाया; और बिना चोरोंकी गोलीका शिकार हुए पाया !

* * *

नालन्दा (तिब्बत)
३१-७-३४

पा-यासे ८॥ बजे रवाना हुए। अब हमारे ही ६ खच्चर साथ थे। एक लाल पहाड़ीके पार करते ही कितने स्तूपोंसे युक्त लङ्-थङ् (=बैलोंका मैदान) का विहार दिखाई पड़ा। पा-यासे यह स्थान दो मीलसे अधिक न होगा। हममें से किसीको यह बात मालूम न थी, अन्यथा कल यहीं आकर ठहरे होते। तिब्बतके प्राचीन मठोंके क़ायदेके अनुसार यह मठ पहाड़के ऊपर न होकर मैदानमें है। हमारे दीपंकर श्रीज्ञान (९८२-१०५४ ई०) के प्रशिष्य पो-तो-पा-रिन्-छेन्-गसल् (१०२७-११०४ ई०) के शिष्य लङ्-थङ्-पा-दों-जें-सेङ्-गे (= बज्रसिंह) ने इस विहारको बनाया था। लङ्-थङ्-पा बड़ा ही विनयधर था, उसके बारेमें कहा जाता है कि उसे जन्म-भर में सिर्फ़ तीन बार हंसी आई थी। संसारके दुःखको वह हर वक्त इतना अनुभव करता था कि उसके लिए हंसना हराम था। तीन बारमें दो बार की ही बात हमें मालूम हो सकी— (१) एक छोटा बचा एक गेहूं के दाने को उठा कर खाना चाहता था। प्रयत्न करने पर भी वह उसे नहीं उठा सकता था। उसी समय उसके

नाकका पोटा बहकर दानेसे लगा। दूसरे ही क्षण सांसके साथ दाना बच्चेके मुंहपर आगया और वह बड़ा प्रसन्न हो गया। यह देखते ही लङ्-थङ्-पाको भी हंसी आई। (२) किसी मंदिरके चढ़ावेमें एक बड़ा फ़ीरोज़ा चढ़ा हुआ था। एक चूहा उसे चुराकर अपने बिलमें ले जाना चाहता था; लेकिन वह उठानेमें सफल न होता था। चूहा जाकर अपने दूसरे साथीको लाया। फिर पहिले चूहेने अपने अगले पैरोंसे फ़ीरोज़ेको छातीमें दबाया। साथीने उसकी पूंछको मुंहसे खींचकर मदद दी। और इस प्रकार फ़ीरोज़ा लेकर वे अपने बिलमें चले गये। चूहेकी इस सफलताको देखकर लङ्-थङ्-पाको भी हंसी आ गई। पुराने विहारोंकी जैसी दुरवस्था आम तौरसे तिब्बतमें दिखाई देती है, वैसी ही इसकी भी है। जब हमारे खच्चर आंगनमें गये, तो पहिले हमने समझा, शायद यह ठहराव होगा; किंतु बादमें मालूम हुआ कि यही लङ्-थङ्-पाका बनवाया विहार है। बारहदरीमें घूमते ही दीवारपर लिखा द्कर्-छग् (=बीजक) दिखाई पड़ा। फिर हम मंदिरके भीतर गये। अस्त-व्यस्त बहुत-सी मूर्तियां रखी हुई हैं। सामने पिछली दीवार तथा बांई ओरकी दीवारोंमें क्रमशः मैत्रेय और बुद्धकी पीतलकी मूर्तियां हैं। दोनों मूर्तियोंके शरीर-मंडल सुन्दर और पुराने हैं। मैत्रेयकी बांई ओर एक विचित्र-सी भारतीय लामाकी मूर्ति देखी। पूछनेपर मालूम हुआ, यह भारतीय सिद्ध फ-दम्-पा-सङ्स्-र्ग्यस् (स्तिपता बुद्ध, मृत्यु १११८ ई०) हैं। बहुत

जीर्ण-शीर्ण मूर्ति कही जाती है। सामने नीचे कुछ और भी छोटी-बड़ी पीतलकी मूर्तियां हैं, जिनमें अधिकांश भारतसे लाई गई हैं— यह उनकी बड़ी नाक, नीची भौंह, कम चौड़ा मुंह, सुंदर छाती और कमर बतला रही हैं। ढूँढनेपर भी उनपर अक्षर नहीं मिले। एक ओर बहुत-सी पुरानी, भोट अक्षरमें लिखी हुई, पुस्तकें बे-परवाहीसे रखी हुई हैं। पीछेके बने देवालयों तथा पुराने स्तूपोंको देखकर हम लौट आये। धर्मवर्द्धनने बीज-कसे खास-खास बातोंका नोट लेना शुरू किया। नाती-लाने फ़ोटो लिये। अभी मंदिरके अँधेरेमें पड़ी सिद्ध फ-दम्-पाकी मूर्तिका भी फोटो लेना था। किट्सन्-लैंपके सहारे उसका भी फोटो लिया गया। बाहरके स्तूपों और सारे विहारोंके भी फोटो लिये। इसी वक्त किसी आदमीने जाकर गांवके ज़मींदारसे— वस्तुतः तो यहांका ज़मींदार भोट सरकार है और खेतीका काम उसकी ओरसे कोई नौकर करवाता है— कह दिया। जवाब तलब किया गया। हमारे साथीने जाकर भोट-राज रे-डिङ्-रिम्पो-छेकी लाल लाखकी मुहरसे अंकित चिट्ठी दिखला दी। मामला वहीं समाप्त होगया।

मध्याह्नके भोजनके उपरान्त हमारा काफिला नालन्दाके लिए रवाना हुआ। भारतके नालन्दाके नामपर जहां लंकामें एक नालन्दा है, वहां तिब्बत भी उससे वंचित नहीं है। प्रायः दो घंटे चलनेपर हम नालन्दा पहुंचे। यद्यपि स्थान निचले

मैदानसे कुछ ऊपर चढ़कर है; किंतु यहां भी मैदान-सा ही है। उसके निचले भागपर बहुतसे परित्यक्त खेत हैं। कुछ खँडहर भी कहीं-कहीं खड़े हैं। नालन्दा बहुत ही सुन्दर जगहपर है, और आजकल पिछले पहाड़ोंके हरित-वसन हो जानेसे तो वह और भी अनुपम हो गया है। यह विहार पन्द्रहवीं शताब्दीके आरम्भमें ही बन गया था। निर्माता रोङ्-स् तोन् शाक्य-ग्यंल्-म् छन् अपने समयके अच्छे दार्शनिक थे और चोङ्-ख-पा (१३५७-१४१९ ई०) के महाविद्वान् शिष्य म्खस्-ग्रुब् (१३८५-१४३२ ई०) के प्रतिद्वन्द्वी थे। किसी समय नालन्दा तिब्बतका नालन्दा था। चोङ्-ख-पाके अनुयायिओंके डे-पुङ् आदि विहारोंकी भांति यह एक अच्छा विद्या-केन्द्र था। इसमें दो ड-सङ् (१सङ्स्-छेन=महागुह्य, २ म्छन्-ञिद्=दर्शन) हैं। प्रदेशोंके क्रमसे कई खम्-ज़न् और छात्रावास भी हैं। ढाई हज़ारके रहने लायक़ घरोंमें पांच सौ ही भिक्षु रहते हैं, जिनमेंभी पढ़ने-वाले पचाससे अधिक नहीं। पहले हम ब्चु-व्ग्यंद्-ल-ब्रङ् गये। यहां एक बड़ा लम्बा-चौड़ा बीजक लगा हुआ है। बाहर द्वारपर एक भयंकर काला कुत्ता बँधा हुआ है, जिसके सामनेसे रक्षकके साथ भी निकलना आसान काम नहीं है। पूछनेपर बतलाया गया, म्छोग्-स्प्रुल्-रिम्पो छेसे तालपत्रकी पुस्तकोंके बारेमें पूछें। आनेपर देखा, लामा प्रायः दो दर्जन भिक्षुओंको विनय पढ़ा रहे हैं। पूछनेपर सहृदयताके साथ बतलाया, यहां तालपत्रकी पुस्तकें

नहीं हैं। हां, स-छेन् कुन्-दूगऽ-सूञिङ्-पोके (१०९८-११५८ ई०) समयका बना एक चित्रपट है। चित्रपटके निकालनेमें अभी देर थी, इसलिए हम विहारके पुरातन मन्दिर चू-ला-खङ्को (=विहार) देखने गये। पुजारी ज़रा देरमें आये। भीतर बुद्धकी विशाल मूर्ति है, जिसके सामने रोङ्-सूतोन्की प्रतिमा है। फोटो लिया। बाहर कुछ और छात्रावासोंको देखते सारे विहारके फोटोके लिए बग़लकी पहाड़ीपर चले। बहुत करनेपर भी सारा विहार एक फ़िल्ममें न आ सका। लौटनेपर चार बज गये थे। अभी पुराने चित्रपटके भी फोटो लेने थे, इसलिए आज नालन्दा ही में रात्रि-वासकी ठहरी। फोटो ले लेनेपर रहनेके लिए अच्छे स्थानका प्रबंध भी हो गया। उक्त लामाने जो कि स्वयं अवतार हैं, बड़े प्रेमका बर्ताव किया।

शामको कुछ मिनटोंके लिए शास्त्रार्थवाली बगीचीमें (छोस्-रामें) भी हो आये। बीस-पचीस आदमी कुल थे। खूब ताली पीटते, शोरगुल करते शास्त्रार्थ हो रहा था। यहां तालपत्रकी पुस्तकें तो नहीं देखनेमें आईं, किंतु नालन्दाका दर्शन और रात्रि-वास अवश्य ही सन्तोषका विषय है।

× × ×

ग्य-ल्ह-खङ्
१-८-३४

नालन्दासे सवेरे विदाई ली। बादल था; किंतु बूंदा-बांदी नहीं थी। एक छोटा-सा जोत पारकर फिर खेतोंके पास आ

गये। नालन्दामें बतलाया गया था कि पा-छ्ब् दो घंटेका ही रास्ता है; किंतु हमें चलते-चलते चार घंटे लग गये। मार्ग १८ मीलसे कमका न होगा। हमारा रास्ता अधिकांश पश्चिमकी ओर था, जिससे बादल फाड़कर समय-समयपर आती सूर्यकी तीक्ष्ण किरणें कष्ट नहीं देती थीं। १२ बजे हम पा-छब्-लो-च-व ञि-म-ग्रगस्की (ज० १०५५ ई०) समाधिपर पहुंचे। यह लो-च-व तिब्बतके तीन सबसे बड़े विद्वान अनुवादकोंमें हैं। आशा थी कि शायद यहां कोई तालपत्रकी पुस्तक हो, किन्तु यहां तो एक मामूली स्तूप है, जिसके भीतर, कहा जाता है कि महान अनुवादकका शरीर है। पासमें मठ है, जिसमें बाईस-चौबीस भिक्षुणियां वास करती हैं।

पा-छब्में बहुत ठहरना नहीं पड़ा। कुछ ही मिनटों बाद हम फिर चल पड़े, और डेढ़-दो मील बाद पर्वतके कोनेमें छिपा ग्य-ल्ह-खङ् ( भारतीय देवालय ) आ गया। सम्-येकी तरहके स्तूपोंको, जो भारतमें आठवीं शताब्दीके आसपास ही बनते थे, देखकर ही मालूम होने लगा कि यह तो आठवीं-नवीं शताब्दीके बादका विहार नहीं हो सकता। मैत्रेय देवालयके सामने दों-रिङ् (=महास्तम्भ) और उसके लेखको तो देखकर और भी विश्वास हो चला कि यह विहार— या कम-से-कम उसका कुछ भाग सोङ्-चन्-सूगम्-बोके समयका बना है। आज पासके गांवमें घुड़-दौड़ थी। मठके सभी भिक्षु तमाशा देखने गये थे। सामान

बाहर ही रख दिया। तब तक हमने दों-रिङ्के लेखकी छाप लेनी चाही। रायसाहब मनोरञ्जन घोषने पटनामें छापेका सामान बांध दिया था; किंतु अभी तक छाप लेनेका मौक़ा नहीं आया था। पहले प्रयत्नमें जैसी छाप आई, उस पर ही सन्तोष करना चाहिए। यद्यपि लेखमें लिखनेवालेका नाम नहीं है; किंतु ल्हासामें ऐसे दों-रिङ् राजाओंके ही हैं, इससे अनुमान है, यह स्तम्भ भी तिब्बतके किसी राजाका ही है। पासका मैत्रेय देवालय शङ्-सुन्-नम्-दों-जें-द्वङ्-फ्युग्ने बनाया था, जो आचार्य शान्त-रक्षितके शिष्य सम्राट ख्रि-स्रोङ्-ल्दे-ब्चन् (८०२-८४५ ई०) का समकालीन था। पाषाण-स्तम्भपर चाहे किसीका लेख हो, उसमें लिखनेवालेने बौद्ध-जनोंको दस अच्छी बातोंका उपदेश दिया है, जिनमें मुख्य बुद्धमें एकान्त निष्ठा रखना, धर्मको मनमें ख़याल रखना, ( मूल ) दृष्टि ( अनात्मवाद आदि ) को चित्तमें रखना आदि हैं। थोड़ी देर बाद मैत्रेय देवालयका पुजारी आ गया। आज उसीके यहां रहनेका निश्चय हुआ। रहनेके लिए विशाल सभामंडप मिला। मंदिरमें मैत्रेयकी विशाल मूर्त्ति है। कहते हैं, तुर्कोंके युद्धके समय मंदिरमें आग लगा दी गई थी। समझमें नहीं आता, तुर्क कब इधर आये। मंदिरमें हस्त-लिखित तीन कन्-जुर और तीन तन्-जुर हैं, जो एकके ऊपर एक छल्ली बांधकर रखे हुए हैं। मन्दिरके एक कोनेमें द्विभुज, लोकेश्वर, बुद्ध और एकादशमुख लोकेश्वरकी पाषाण-मूर्त्तियां हैं। पाषाणकी

मूर्त्तियां भोट देशमें अति दुर्लभ हैं। ये मूर्त्तियां भारतीय मालूम होती हैं। मैत्रेयके दर्शनके बाद हम प्रधान मठको देखने गये। पुस्तकों, मूर्त्तियों और कमखाबकी छतोंसे मालूम होता है कि किसी समय यह विहार बहुत रौनक़पर था। विद्यार्थियोंके रहनेके बहुतसे मकान हैं। सूतोद्, सूमद् दो-ड-सङ् (=महाविद्यालय) तथा शास्त्रार्थकी बग़ीचीके होते हुए भी अब विहार श्रीहीन है। भिक्षु १८० के क़रीब बतलाये जाते हैं। एक अवतारी लामा और दो-मूखन्-पो (Dean) भी हैं। हमें आशा थी कि इस पुराने विहारमें तालपत्रकी पुस्तक शायद मिल जाय; किन्तु निराश होना पड़ा। तीन पुराने चित्रपट देखे, जिन्हें रिन्-छेन्-ब्सम्-ग्रुब्ने बनवाया था। भारतसे आई कुछ मूर्त्तियां यहांके विहारमें हैं। सम्भव है, कुछ और भी महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ हों; किन्तु उसके लिए अधिक दिन और अधिक परिचयकी आवश्यकता है।

कल कोई विशेष बात न थी, इसीलिए लिखनेकी इच्छा न हुई। मेघके झिमझिमाते ही में हम लोग ग्य-ल्ह-खङ्से चल दिये। हां, वहां कूड़ेमें से कुछ हस्त-लिखित पुस्तकोंके पन्ने लिये। उनमें एक पोथी शतसाहस्रिकाकी बारह पोथियोंमें से थी। दो छोटी-छोटी जोतें पार करनी पड़ीं, फिर कुछ दूर तक जौ-गेहूँके हरे खेतोंमें से चलना पड़ा। सामूली ढालुआं चढ़ाईके (थोड़ी-सी प्राय: सवा मील) बाद शर बुम्-पा मठमें

पहुंचे। दीपंकरके शिष्य डोम्-तोन्के प्रशिष्य श-र-बाका यह निवास-स्थान था। एक घेरेमें बहुतसे स्तूप हैं, जिनमें एकमें श-र-बाका शरीर भी है। इसीकी बगलमें एक छोटा स्तूप है, जिसके महत्वके बारेमें कहा जाता है कि संसारमें चाहे हिम-प्रलय हो जाय; किन्तु इस स्तूपपर बर्फ नहीं पड़ेगी। एक और सम्मेलन-घर है, किन्तु वहां भी कोई विशेष वस्तु नहीं है। आजकल यह विहार भिक्षुणियों (?) का है, जिनकी संख्या पूछनेपर एक वृद्धा भिक्षुणीने कहा— तीन-बीस, सोलह-सत्रह अर्थात् ७६-७७। हमने आशा की थी, शायद यहां हमारे कामकी कोई चीज़ हो। २॥ बजे हम लोग फिर रवाना हुए। चढ़ाई थी और एक छोटी जोत। यहीं दूसरी ओरके पहाड़पर हमने नाती-लाको एक ऽ दुद्-मो-नग मो (=काली भूतनी) दिखलाई। हमने कहा— देखो, (१)—इसके वस्त्र बिलकुल काले हैं, जैसे इस मुल्कके स्त्री-पुरुषोंके नहीं हुआ करते, (२) इसका आकार अधिक लम्बा-चौड़ा है, (३) इसके पास भेड़ें या चमरियां नहीं हैं और (४) न आसपास हरी घास है। लेकिन नाती-ला भी अब हमारी भाषाको समझने लगे हैं। पांच बजेके क़रीब हम रे-डिङ् (अथवा कन्-सू और मंगोलियाके रास्तेपर) पहुंच गये। एक गांवमें रहनेका स्थान न मिलनेपर अगले गांवमें एक ग़रीबके घरमें जगह मिली। गांवका नाम फन्-दा है। 'यथा नाम तथा गुणः' तो नहीं मालूम होता।

एक तिब्बती वृद्धा और वृद्ध
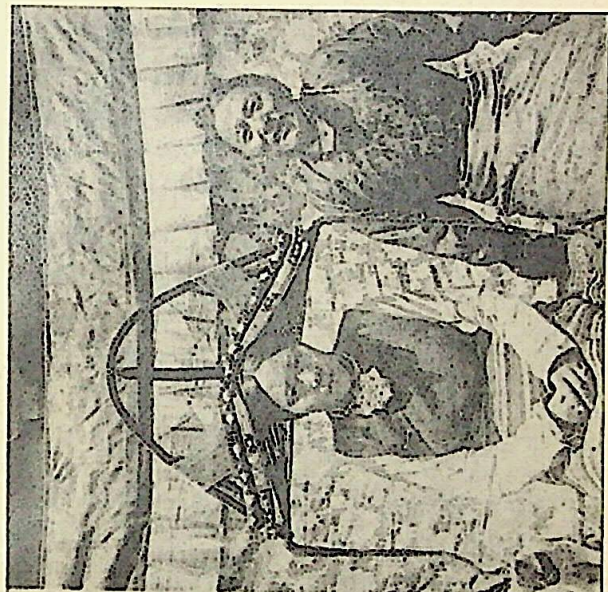
स-क्य–दम्पती
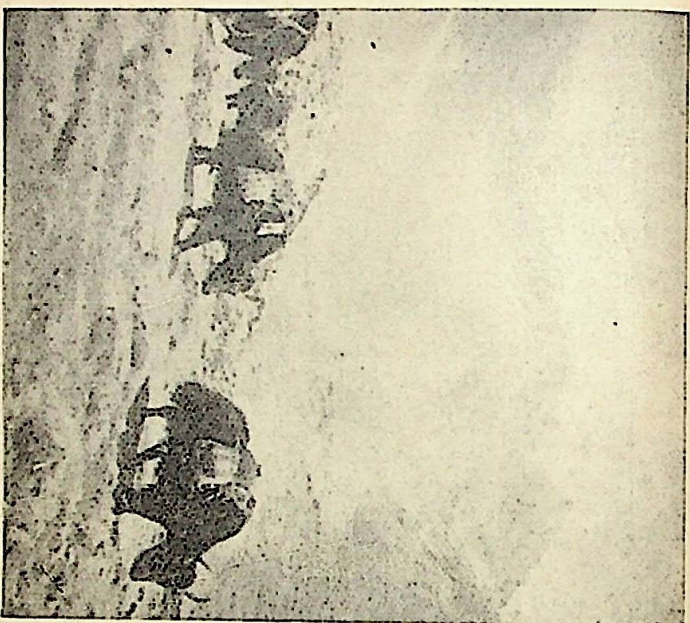
थोङ्-ला—चमरी याक्
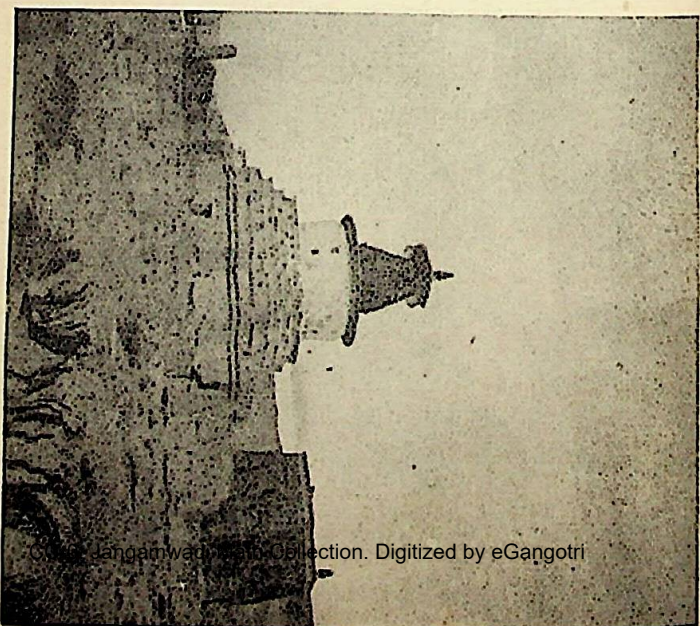
मव्-जा—एक स्तूप

पो-तो ( दीपंकरके प्रशिष्य पोतोपाका निवास ) यहांसे तीन-चार मीलसे अधिक नहीं है; किन्तु रास्ता अलग होनेसे जानेकी सलाह नहीं हुई। आज पौने-नौ बजे चले। थोड़ी दूर-पर पहाड़के किनारे सात स्तूप ( कुछ छोटे स्तूपोंके साथ ) दिखाई पड़े। यह भी दीपंकरकी परम्पराके एक विद्वान्का है—नाम है सनेङ्-सर् स्तूप। इधरके पहाड़ोंपर कुछ झाड़ियां दिखाई पड़ती हैं, जो यहांके लिए नई चीज़ हैं। झाड़ियां अधिकतर जंगली गुलाबकी हैं। तीन-चार मील चलनेके बाद मानव-वस्ती खतम हो गई। हां, चमरियां तो जोतके पास तक मिलीं। रास्तेमें एक जगह अपने दाएँ, पहाड़ पर एक कस्तूरा मृगको भागते देखा। ठीक मध्याह्नमें हम जोतके ऊपर पहुंचे। इस जोत-पर डाकुओंका भय बहुत अधिक रहता है; किन्तु हमारे साथियोंके पास दो पिस्तौलें और एक बन्दूक भी है। उतराईमें हम लोग पैदल चलना अधिक पसन्द करते हैं, इससे खचरकी पीठ कटनेका डर भी कम रहता है। दो बजे तक हम उतरते ही गये। फिर बाईं ओरकी पहाड़ी रीढ़को पार कर लेनेपर सूतग्-लुङ्की नदी आ गई। मठ अभी डेढ़ मीलपर था। रास्ता उतराईका था। सब लोग पैदल चलने लगे। संघ-धर्म-वर्द्धनके खचरकी लगाम उसके पैरमें आ गई। हमारे खचरवाले सो-नम्-ग्यंजेको गुस्सा तो आया धर्म-वर्द्धनपर; किन्तु उसे निकाला उसने खचरीपर। पहलेसे भी सो-नम्-ग्यंजेको शिकायत थी कि धर्मवर्द्धन क्यों

नहीं काम करते; किन्तु बचपनसे ही अभ्यास न होनेके कारण वे मेहनत करनेमें असमर्थ हैं। मठके पास पहुंचनेपर हम लोग उसे धारके इस पार छोड़ लामाके पास गये। शिकमकी महारानीके भाई र-क-स कुशोका पत्र होनेपर भी एक बहुत ही दरिद्र जगह हमें बतलाई गई। इसे हम अपना अपमान समझ रहे थे कि इसी समय ख़याल हुआ कि खच्चरोंके आनेमें देर क्यों हो रही है। थोड़ी देरमें सो-नम्-ग्यं-जे आया, बोला—मैं साथ नहीं चलूँगा; मैं ल्हासा लौटूँगा। हमने भी समझाया, दूसरे साथियोंने भी समझाया; किन्तु वह नहीं माना। एक खच्चर लेकर चल दिया। पीछे मालूम हुआ, वह ल्हासाकी ओर न जाकर अपने जन्म-स्थान खम्की ओर जा रहा है। इस प्रकार डाकुओंसे भरे इस प्रदेशमें पांच खच्चरोंको हमारे मत्थे मार वह चलता बना। आज खच्चरोंको बांधने और खिलानेका काम नाती-ला और धर्म-वर्द्धनपर पड़ा। यात्रामें भी कुछ कमी करनी पड़ेगी। यहांसे रे-डिङ्के लिए दो आदमी मिलनेवाले हैं। देखो, कल क्या होता है।

उक्त घटनाने चित्तको कुछ चिन्तित बना दिया था, ऐसे समय विहार-दर्शनको गये। प्रधान विहार सन् ११८० में स्तग्-लुङ्-थङ्-पा दों-ग्लिङ्-रस्-पाने बनवाया था। एक आंगनके गिर्द विशालकाय बुद्ध-मूर्त्तियोंके गृह हैं। मूर्त्तियां



सुन्दर हैं। अनेक कन्-जुर्, तन्-जुर्की सुन्दर हस्त-लिखित

पुस्तकें ईंटोंकी छल्लीकी तरह रख दी गई हैं। जब पढ़ना नहीं, तो दूसरी तरह रखने की आवश्यकता क्या ? आखिर कुछ समय बाद जीर्ण मन्दिरके गिरनेपर ये पुस्तकें भी नष्ट हो जायँगी; किंतु क्या दामसे भी यह लोग एक-दो प्रतियां दे सकेंगे ?

× × ×

ल्ह-खङ्-ग्दोङ्
४-८-३४

आज जब हम सोये पड़े थे और घरमें भी अँधेरा था, तभी सो-नम्-ग्यंजे आ पहुँचा। पूछनेपर बतलाया कि उसके सामानको रास्तेमें से कोई उठा ले गया, जब कि उसे फेंककर पीछेकी ओर भागते खच्चरको वह पकड़ने लौटा। यह भी कहा कि रातको वह पहाड़में सोया था। उसकी इन बातोंपर विश्वास न होता था, बल्कि और सन्देह बढ़ता जाता था कि कहीं मारकर सामने लूटनेके लिए तो नहीं आया है। हमारे पास ५००) के पैसे भी हैं, और कुछ दूसरे सामान भी। ऐसा सन्देह करनेका कारण था— सो-नम्-ग्यंजेके जन्म-स्थानके लोगोंका स्वभाव। उसके देशमें लूटमार सभी लोगोंका पेशा है। यद्यपि सो-नम्-ग्यंजेका चार-पांच वर्षका रिकर्ड बहुत अच्छा रहा है, तो भी हम उसे अर्द्ध-विक्षिप्त समझते थे। वह कहता भी था, मैं तो नदीमें छलांग मारकर जान दे दूँगा। इस प्रकार आज रास्ते भर हम लोग सशंकित और सजग ही चलते रहे।

स्तग्-लुङ् मठसे प्राय: डेढ़ मील तक साधारण ढालू भूमिपर चलकर, एक सूखे पत्थरोंको जोड़कर बनाये पुलसे हम धारके बाँएँ हो लिये। रास्तेमें पहाड़के वृक्षमें ढके एक मठका फ़ोटो लिया। जिस जगह हम चल रहे थे, वह ल्हासासे (१२००० फ़ीट) अधिक ठंडा है, तो भी आजके पहाड़ जंगली गुलाब और करौंदेकी झाड़ियोंसे खूब ढके थे। छोटी-छोटी घास तो वर्षाके कारण होगी; किंतु बिच्छु-घास तो बारह-मासी है, जिसकी यहां बहुतायत है। चारों ओर हरियालीकी अद्भुत शोभा है। हमारे काफ़िलेमें दो नौकरोंकी वढ़ती हुई। उन्हें हमने २$\frac{३}{१०}$ साङ (प्राय: ६ आने) रोज़पर रखा है।

१२ बजे हम लोग फुन्-दो के, ब्रह्मपुत्रकी उस शाखाके, तटपर पहुँच गये, जो ल्हासा होकर गुज़री है। यहां आदमियोंके लिए लोहेकी सांकलपर चमड़ेसे बांधी लकड़ियोंका झूला है। सामानके लिए चमड़ेकी नाव या क्वा है, जानवरोंके लिए तैर-कर पार होना पड़ता है। हम लोग दो घंटेके इन्तज़ारके बाद क्वासे उतर सके। मंगोलिया और कन्-सू (चीन) की ओरका यह प्रधान रास्ता है। यहां भी लकड़ीकी नावका इन्तज़ाम करना चाहिए था।

छ-ला पार करनेके बाद ही पुरुषोंके वालोंमें भेद दिख-लाई पड़ता है। यह लोग खाम्‌वालोंकी भांति सामनेके बालोंको कैंचीसे कटवाते हैं। जहांसे इस पत्रको लिख रहा हूँ, वहांसे

आधे दिनके रास्तेपर ला-ग्न्गिस् (जोत्-युगल) है, जिसके पार होते ही हम होर् देशमें पहुँच जाते हैं, भोट देशके होते हुए भी वहांके स्त्री-पुरुषोंकी पोशाकमें बहुत फ़र्क है।

२। बजे हम लोग रवाना हुए। अब हम ल्हासावाली नदीकी बांई शाखाके दाहनेसे चल रहे थे। यह धार तो पिछली धारसे बहुत बड़ी है। ख़ैरियत यही है कि इसे हमें पार नहीं करना होगा। इधरके पहाड़ोंपर तो और भी अधिक झाड़ियां और हरियाली है। खेतीके लायक ज़मीन होनेपर भी खेत देखनेमें नहीं आते। नदीके पार एक-आध जगह सरसोंके पीले फूल दिखलाई पड़ते थे। हां, जगह-जगह पहाड़ों पर चरती चमरियोंके चलायमान काले दाग़ ज़रूर दिखलाई पड़ते थे। दो-एक जगह परित्यक्त ऊँचे घरोंकी पत्थरकी दीवारें बतला रही थीं, किसी समय इधर अबसे अधिक बस्ती थी। नदीकी उपत्यका काफ़ी चौड़ी है। दो-तीन जगह हमें होर् प्रान्तवाले मक्खन-विक्रेताओंकी लदी चमरियां मिलीं। दो-तीन जगह तीर्थाटक भिखमंगे भी मिले। होर्की दो-तीन तीर्थाटिकाओंके फोटो लेने का भी हमने प्रयत्न किया।

५ बजे हम उस स्थानपर पहुँचे, जहांसे रे-डिङ्का रास्ता मंगोलियाके रास्तेसे अलग होता है। यहां एक मंदिर है, जिसे रिग्स्-ग्सुम्-स्गोन्-पोका ल्ह-खङ् (=देवालय) कहा जाता है। लोग कहते हैं, इसे स्रोङ्-ब्चन् स्गम्-पोने बनवाया था। स्थान

तो महत्वपूर्ण ज़रूर है। तो भी देवालय इतना पुराना नहीं होगा। हां, यह ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दीसे इधरका भी नहीं हो सकता। मंदिरके भीतर बुद्धकी दो सुन्दर मूर्तियां हैं। कुछ और मूर्तियोंके अतिरिक्त एक एकादशमुख अवलोकितेश्वरकी भी मूर्ति है। ल्ह-खङ् (=देवालय) पहाड़के उस कोनेपर है, जहांसे मंगोलियाका रास्ता मुड़ता है। बगलके गृहपतिने स्वागतपूर्वक हमें अपना सबसे अच्छा कमरा दिया। इस कमरेमें आसन और चायकी चौकियोंके अतिरिक्त दीवारोंपर कितने ही चित्रपट और एक कोनेमें सजाकर रखी पद्मसंभवकी मूर्ति है। किट्सन्-लैम्पके सहारे हमने एक फोटो लेनेका प्रयत्न किया। आ जाये, तब है।

यहांसे रे-डिङ् पांच मीलके क़रीब है। कल सबेरे ही वहां पहुंच जायँगे।

× × ×

रे-डिङ्, ५-८-३४

हमारी घड़ीसे ७॥ बजे और नाती-लाकी घड़ीसे ७॥। बजे हम लोग रवाना हुए। आकाश मेघाच्छन्न था। छोटी-छोटी फुहारें पड़ रही थीं। ला-गुग्स्कि ओरसे आनेवाली धारको पारकर हम बड़ी धारकी दाहनी ओरसे ऊपरकी ओर चढ़ने लगे। आजका भी पहाड़ झाड़ियों और घाससे ढका था। नदीकी दूसरी ओर चमरी (याक) चरानेवाले डोक्-पा लोगोंके

तम्बुओंसे धुआं निकल रहा था। रास्तेमें दो-चार जौके खेत भी देखे। पुराने परित्यक्त खेतोंकी मेंड़ोंसे मालूम होता था कि किसी समय इधर अधिक खेत थे। प्राय: तीन मील चलनेके बाद देवदारके एक-आध छोटे वृक्ष दिखाई पड़ने लगे। मील-भर रहनेपर तो पहाड़में हज़ारों हरे-हरे देवदार थे। इधर देवदार काटनेकी सख्त मनाही है, इसलिए यहां इतने वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। सर्दीके बारेमें पूछनेपर मालूम हुआ कि यहांकी यह बड़ी नदी भी ऊपरसे जम जाती है, और आदमी तथा जानवर आसानीसे इस पारसे उस पार जा सकते हैं। उस वक्त देवदारकी हरियालीको छोड़कर और कहीं हरियाली देखनेमें नहीं आती। ल्हासासे यह स्थान अधिक ऊँचा है, इसमें तो सन्देह नहीं; लेकिन आश्चर्य यह है कि यहांके पहाड़ोंपर जितनी हरियाली दिखलाई पड़ती है, उतनी ल्हासावाले पहाड़ोंपर नहीं।

हमने एक मानी पारकी। फिर देखा, हमारे दो साथी एक छोटी चट्टानपर पत्थरके टुकड़ोंको मार रहे हैं, और साथ ही कहते जा रहे हैं— "चा-फु, मा-फु" (चाय प्रदान करो, मक्खन प्रदान करो)। मालूम होता है, सभी श्रद्धालु यात्री यहां-पर चा-फु, मा-फु करते हैं, तभी तो इस छोटी-सी चट्टान-पर पचासों गोल-गोल गड्ढे हो गये हैं। पहले तो गोल गड्ढोंको देखकर मेरा माथा ठनका— कहीं ल्हासाके पुरातन लेखवाले शिला-स्तम्भकी भांति यहां भी तो किसी पुराने

लेखको कूटा नहीं जा रहा है; लेकिन पीछे यह देखकर सन्तोष हुआ कि इस चट्टानपर लेख नहीं है। एक घुमावको पार करते ही देवदारके घने जंगलमें रेडिङ् गुम्बा सामने आ गई।

हमारे साथियोंने अपनी पिस्तौल और बन्दूक़को हाथमें ले लिया, क्योंकि हथियारको बिना हाथमें लिये इस गुम्बाके भीतर जाना निषिद्ध है। पश्चिमवाले विशालकाय स्तम्भके पास पहुंचकर हमने रे-डिङ् रिम्पो-छेकी चिट्ठी भीतर गुम्बाके अफ़सर दे-छङ्के पास भेजी। थोड़ी देरमें बुलावा आया, और बूल-अङ् (बूल-मऽि-फो-अङ् = लामाका महल) के एक कमरेमें रहनेके लिए स्थान मिला।

अब हमें सबसे पहले उस कामकी फ़िक्र हुई, जिस कामके लिए इतनी दूर, इतनी परेशानीके साथ, आये हैं। धर्मवर्धनने जाकर पूछा, तो मालूम हुआ कि रे-डिङ् रिम्पो-छेने पत्रमें सिर्फ़ ठहरनेके लिए अच्छा स्थान देनेको लिखा है। मुझे तो इस बातपर पहले विश्वास न होता था। और विश्वास करनेको जी क्यों चाहे? इतनी तकलीफ़ झेलकर, पद-पदपर चोरोंके खतरेवाले इस प्रदेशमें तो हम इसलिए आये थे कि रे-डिङ्में हमें दीपंकर श्रीज्ञानके हाथके लिखे तालके पत्ते देखनेको मिलेंगे। देखनेको ही नहीं, बल्कि हम तो फोटो लेनेके सारे सामानके साथ आये थे। क्या हमारा यह सारा प्रयत्न व्यर्थ जानेको है? उस चिट्ठीके भीतर एक दूसरे अफ़सरके लिये भी चिट्ठी थी, जो एक

दिन पूर्व ल्हासा चला गया। साथियोंको ख़याल हुआ, शायद उसमें कुछ हो। उपस्थित अफ़सर दूसरेकी चिट्ठीको फाड़नेसे डरता था; किंतु हम लोग समझते थे, उसमें भी हमारे ही बारेमें कुछ लिखा होगा। हमें रिम्पो-छे महाशयने सिर्फ पत्रवाहक थोड़े ही बनाया होगा। आख़िर उसे भी खोला गया; पर उसमें हमारे बारेमें कुछ भी नहीं था। वह उनका व्यक्तिगत पत्र था। वास्तवमें मुझे तो दूसरे पत्रके खोल लिये जानेपर मालूम हुआ कि यहांके अफ़सरको एक अलग भी पत्र था। यदि यह पहले मालूम हुआ होता, तो मैं दूसरे पत्रको खोलनेकी सलाह न देता। अब ज़रा पत्रका इतिहास सुनलो। पिछली यात्रामें जब रे-डिङ् रिम्पो-छे से-रा विहारमें पढ़ते थे, तभी उन्होंने मुझसे कहा था कि उनके विहारमें दीपंकरके हाथकी कुछ पुस्तकें हैं; रेडिङ् चलनेपर वे उन्हें दिखायेंगे। उस समय रे-डिङ् रिम्पो-छे तिब्बतके राजा नहीं हुए थे। अबकी बार जब उनसे मिला, तब यह चिट्ठी मिली। और उस चिट्ठीमें पुस्तकका ज़िक्र नहीं! यदि मुझसे यह बात ल्हासामें ही कह दी गई होती, तो शायद मैं ऐसी ख़तरनाक यात्राको न करके इस समयको किसी दूसरे मठमें लगाता। इससे तो हज़ार गुना अच्छा होता, यदि मैं रिम्पो-छेके पत्रको न लाया होता। सम्भव है, उस समय ऐसा अच्छा ठहरनेका स्थान न मिलता; किंतु उससे लाभ होता।

रे-डिङ् विहारको आचार्य दीपंकरके शिष्य ब्रोम्-स् तोन-

पाने (१००३-६४ ई०) आचार्यके देहान्तके (१०५४ ई०) बाद बनाया था। ऽब्रोम्-स्तोन्-पा भिक्षु न होते हुए भी आचार्यका प्रधान शिष्य था, और तिब्बतमें उनके पहुंचनेके वक्तसे ही वह छायाकी भांति बराबर साथ रहा। उसके बनाये विहारमें आचार्यकी चीज़ोंका होना ज़रूरी ही ठहरा। इन चीज़ोंमें ऊपर कहीं एक तालपत्रकी पुस्तकका बस्ता है, जिसका आधा भाग जल गया बतलाया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ पुराने चित्रपट हैं, जिनमें दो वे हैं, जिनको चित्रकारने दीपंकरको देखकर बनाया था, और जिनका वर्णन दीपंकरके पुराने जीवन-चरित्रमें भी आता है। अफ़सर भिक्षुने दूसरी चिट्ठीके खोलनेसे पहले कहा था कि सोनेका चढ़ावा चढ़ानेसे दीपंकरवाले दोनों चित्रपट बाहर लाये जा सकते हैं, उस वक्त फोटो ले लेना; पर दूसरी चिट्ठीमें कुछ न देखनेपर हमने फिर चित्रपटकी बात छोड़ दी।

मध्याह्न भोजनके बाद एक पथ-प्रदर्शकके साथ हम भिन्न-भिन्न मंदिरोंके दर्शनके लिए चल पड़े। पहले पश्चिम भागके ग्-से र्-बुम् मंदिरमें गये। मन्दिर छोटा है, जिसमें दीपंकर, ऽब्रोम्-स्-तोन्-पा आदिकी छोटी-छोटी मूर्तियां हैं। गुम्बामें भिक्षुओंकी रजिस्टर्ड संख्या तो ३७० बतलाई जाती है; किंतु कुत्तोंकी संख्या भी काफ़ी है। ग्सेर्-ऽबुम् (लाख-सुवर्ण) मन्दिरमें वैसा सोना तो नहीं दिखलाई पड़ा; पर ठीक द्वारपर ही एक कुत्ता मरा पड़ा था, जिसे हटानेकी ज़रूरत अभी लोग महसूस नहीं कर रहे थे।

वहांसे परिक्रमामें होते हम स्गोम-प-ल्ह-खङ्में पहुँचे। स्गोम्-प ड्ग्रोम्-स् तोन्-पाका ( मृ० १०६४ ई० ) प्रशिष्य तथा श-र-बाका शिष्य था (समय बारहवीं सदी)। मंदिरके भीतर बहुतसी मूर्तियां हैं, और दीवारोंपर बहुतसे चित्रपट लटक रहे हैं। दीवारों-पर के पुराने चित्रोंका भोट-देशमें मिलना मुश्किल है, क्योंकि लोग समय-समयपर चित्रोंको नया करते रहते हैं; किंतु चित्रपटोंमें हमें पुराने मिल सकते हैं। तिब्बतमें आनेके बाद आज ही हमें भारतीय चित्रपट दिखलाई पड़े। कुछ ऐसे चित्रपट इस मन्दिरमें भी हैं। इसके पास ही तम्-चन्का पवित्र देवदार है, जिसके ऊपर भोटका उक्त महान् देवता निवास करता है। श्रद्धालु नाती-लाने इस देवताके ऊपर एक चांदीका टंका चढ़ाया। अब हम चलकर पूर्व किनारेपर आ गये। तुमको यह भी मालूम होना चाहिए कि यहांके कितने ही देवदारोंके नाम पुराने ग्रन्थों तकमें दर्ज हो गये हैं। पश्चिम दिशामें चन्दन-द्कर्-पो (श्वेत चन्दन) और चन्दन-द्मर्-पो (रक्त चन्दन) हम देख चुके थे। अब पूर्व ओर ग्रुब्-सिल् और योन्-तन् (गुण) के दो देवदारोंको देखा। इन पुराने देवदारोंमें कितने ही अब सूख गये हैं, फिर भी उनको क़ायम रक्खा गया है। अब हम प्रधान देवालय ग्चुग्-ल्गग्-खङ्की ओर चले। रास्तेमें ऊपरकी ओर एकतल्लेकी बहुतसी घरौंदे-जैसी अस्त-व्यस्त कोठरियां हैं। इन्हींमें यहांके भिक्षु रहते हैं। रास्तेमें एक नागदेवताकी झोपड़ी है, और फिर आधे दर्जन कुत्तोंकी बैठक।

प्रधान देवालय यहांका भी स्तग्-लुङ्के प्रधान देवालयकी तरह भीतरी आंगनवाला है। हां, इसकी दीवारें उतनी ऊँची नहीं हैं। यह आंगन भी पीछेसे जोड़ा मालूम होता है, क्योंकि ब्रोम्-स्तोन् ( डोम्-तोन् ) का बनाया छोटा मन्दिर आंगनके पूर्वोत्तर कोनेपर है। दक्खिनका भाग खम्भोंके बरांडेमें है, जिसके पश्चिमी भागोंमें चौरासी सिद्धोंके चित्र भीतपर लिखे हुए हैं। चित्र बहुत पुराने नहीं हैं, तो भी उनमें कितनी ही पुरानी परम्परा है। पश्चिमी बरांडे या बारादरीसे होते हुए हम उत्तरी भागके पश्चिमवाले देवालयमें घुसे। बिजलीबत्ती हमारे हाथमें थी। भीतर दो स्तूप और बुद्ध तथा मैत्रेयकी मूर्तियां हैं। दीवारें तेईस-चौवीस हाथसे कम ऊँची न होंगी, और उनके सहारे कन्-जुर, तन्-जुरकी पुस्तकें छत तक चुनी गई हैं। यह सभी पुस्तकें हाथसे सुन्दर अक्षरोंमें लिखी गई हैं। इनमें से बहुतसी तो सात सौ वर्षकी होंगी। किन्हीं-किन्हींपर पहलेके मालिकोंके नाम भी हैं। प्रब्-फू-पा नामके किसी विद्वान्का नाम बहुतसी पुस्तकोंमें देखा जाता है। इस देवालयके पास पूर्वकी ओर दूसरा देवालय है। इसमें भी स्तूपों और मूर्तियोंके अतिरिक्त वैसी ही पुस्तकोंकी छलियां दीवारके सहारे जोड़ी हुई हैं। कुछ पुस्तकोंके पन्ने तो कीड़े खा भी रहे हैं; पर कीड़ोंको खाकर खतम करनेमें अभी शताब्दियां लगेंगी। इस समय कीड़ोंके भक्ष्य होनेके सिवा इनका कोई प्रयोजन भी नहीं मालूम होता। यह इस तरह नहीं रखी

गई हैं कि उनमें से कोई पुस्तक निकाली जा सके । मैं सोच रहा था कि भोट-देशके पुराने मठोंमें क़ैद इन पुस्तकोंका कभी उद्धार होगा। सोचनेसे तो यही मालूम होता है कि किसी मुहम्मद बिन बख़्तियारका पैदा होना असम्भव होनेसे शायद समय-समयपर मन्दिरोंको तबाह करनेवाले अग्निदेव ही इनका उद्धार करें, अथवा शायद किसी समय ज्ञानपूर्वक और क्षोभपूर्वक ही इनका उद्धार हो। तीसरी बात अधिक जँचती है; किंतु अभी तो उसके लिए बहुत क्षीण-सी लाली पूर्वकी ओर दिखाई पड़ती है। फिर सोचने लगा, क्या नालन्दा और विक्रमशिलामें भी शताब्दियोंसे एकत्रित तालकी पोथियोंको इसी प्रकार रखा गया होगा, जब कि मुहम्मद बिन बख़्तियारकी फौज आग और तलवार लेकर उनके द्वारपर पहुंची थी ? पर ऐसी छल्ली बनानेमें तालकी पुस्तकोंका आकार बाधक था।

अन्तमें हम सबसे कोनेवाले पुराने मन्दिरमें गये। यह औरोंकी भांति विशाल नहीं है, पर डोम्-तोन्का बनवाया होनेसे यह परम पवित्र है। इसके भीतर प्रधान मूर्ति मंजुवज्रकी एक छोटी-सी पीतलकी मूर्ति है। यह मूर्ति खो-फु-लो-च-व (जन्म ११७३ ई०) के पास थी। यही वह लो-च-व है, जो सन् १२०० में विक्रमशिलाके प्रधान आचार्य शाक्य श्रीभद्रको नेपालसे भोट ले आया था। पश्चिम ओरकी दीवारपर प्रायः पांच-छै हाथ ऊपर कांच लगे दो बक्सोंके भीतर दीपंकर श्रीज्ञानके वे दो

चित्र हैं, जिन्हें चित्रकारने उन्हें देखकर बनाया था । दक्षिण ओरके चित्रपटमें आचार्यके बाएँ हाथमें एक तालपत्रकी पुस्तक है, और दाहिना हाथ उपदेश-मुद्रामें है । चेहरेपर बुढ़ापा तथा खोपड़ी और मुँहका लम्बापन भी बतलाते हैं कि उक्त कथानकमें कुछ सत्यका अंश है । वैसे तो तुम जानते ही हो कि सभी धर्मस्थान झूठके अड्डे हैं । शायद उतनी झूठी कथाएँ और जगहें नहीं मिलेंगी, जितनी धर्मके दरबारमें । धर्म वस्तुतः झूठकी आयुको लम्बा करनेमें बड़ा सहायक होता है । इस मन्दिरमें भी झूठका एक बड़ा भारी इश्तिहार है। वर्तमान रे-डिङ् लामाके ( जिनकी आयु इस समय बाईस वर्षकी है ) पैरका एक काले पत्थरपर निशान कांचके भीतर रखा हुआ है । श्रद्धालु भक्तोंसे कहा जाता है कि बचपनमें लामा रिम्पो-छेने पैरको सहज स्वभावसे पत्थरपर रख दिया था और उसपर यह निशान उतर आया । यदि समन्तकूट और नर्मदा नदीकी पहाड़ीपर बुद्धके बड़े-बड़े पाद-चिह्न उतर सकते हैं, तो यहां एक अवतारी लामाके छोटे-से पद-चिह्न उतरनेमें कौन-सी असम्भव बात हो सकती है ? यदि भगवान अपने भक्तोंके झूठके इस तूफाने-बदतमीज़ीको देखते तो क्या कहते ?

अब हम दूसरे नम्बरवाले मंदिरके द्वारके बाहरके स्तम्भा-गारमें आये । रे-डिङ्के पुराने चित्रपट आजकल यहीं टांगे गये हैं । इन चित्रपटोंकी संख्या दर्जनसे अधिक है । सभी चित्र

अजन्ताकी चित्रकलासे अभिन्न हैं। मुझे तो आशा न थी कि अजन्तासे इतनी समानता रखनेवाले चित्रपट यहां हो सकते हैं। दोमें तो अजन्ताके प्रसिद्ध बोधिसत्व जैसी खड़ी तसवीर है—वही आभूषण, वही बंकिम ठवनि, वैसे ही कम और सुन्दर आभूषण, वैसी ही विशाल भुजाएँ और वक्ष, वैसा ही उदर-प्रदेश। फ़ोटो लेनेकी अनुमति न होनेसे मैं उनकी नक़ल भारत नहीं ला सकता, इसका बड़ा अफ़सोस रहा।

स्थानपर लौटकर मैंने धर्मवर्धनको एक चित्रपटकी नक़ल करनेके लिए भेजा। उन्होंने अभी सिरको भी पूरा नहीं उतारा था कि हुक्म आया, रे-डिङ् रिम्पो-छेके पत्रमें अनुमति नहीं है, इसलिए नक़ल नहीं कर सकते। आजके बर्तावसे चित्तको अत्यन्त क्षोभ हुआ। रे-डिङ्के लिए बहुत खेद हुआ। यदि उन्हें मंज़ूर न था, तो ल्हासामें ही क्यों नहीं कह दिया? "हां", कहकर वैसा पत्र लिखना कभी भद्रोचित नहीं कहा जा सकता। इस मठमें एक बार आग लगी थी, जिसमें ये चित्रपट बाल-बाल बचे हैं। नहीं कहा जा सकता कि भारतीय कलाकी अमूल्य निधि और दीपंकरके हाथकी यह पवित्र पुस्तक (जिसमें शायद उनकी हिंदीमें रचित वज्रासन-वज्रगीति भी हो) न-जाने कब इन नादान रक्षकोंके हाथसे सर्वदाके लिए नष्ट हो जाय। जब दूसरी ओर ख़याल करता हूँ, तो मुझे ऐसे क्षोभका कारण भी नहीं मालूम होता। प्रभुता पाकर ऐसा भाव होना संसारमें सर्वत्र देखा जाता है।

पवित्र समझी जानेवाली वस्तुओंके साथ भी ऐसा बर्ताव होता ही है। मुँहपर अप्रीतिकर बात न करनी भी मनुष्यका स्वभाव है। खिलाड़ी सभी बाज़ियां नहीं जीता करते, तो मुझे इस असफलतापर क्षोभ क्यों ?

अग्-ग्यंब्, ७-८-३४

कल सवेरे रे-डिङ्से प्रस्थान करते वक्त एक बार फिर प्रधान देवालय देखनेकी इच्छा हुई। पहले लिखनेमें हमने ग़लती की। उत्तर ओर तीन देवालय हैं, जिनमें सबसे पश्चिमवाला मैत्रेय देवालय कहा जाता है, बाक़ी दो ग्सुङ्-रब्-द्बुस्-म और ग्सुङ्-रब्-शर्-म कहे जाते हैं। दूसरी बार जानेका मतलब था उन पुराने चित्रपटोंको एक बार फिर देख लेना; लेकिन उस वक्त वहां मठके भिक्षु बैठे पाठ करते और सत्तू खाते थे। इन चित्र-पटोंको यहांके लोग ग्य-थङ् (भारतीय चित्रपट) कहते हैं। इनकी संख्या सोलह है। कुछ छोटे चित्रपट भी भारतीय ढंगके हैं। सन् १२३९ में चंगेज़ खांके सेनापति दो-तीने रे-डिङ् मठको जला दिया था, इसलिए उससे पहलेकी चीज़ोंमें यह चित्रपट और कुछ ही और चीज़ें हो सकती हैं। उसी समय उक्त सेना-पतिने ग्यंल्-खङ्कोभी जलाया था। ग्य-ल्ह-खङ्के बारेमें लिखते वक्त मैंने लिखा था— 'कहते हैं, तुर्कोंके युद्धके समय मन्दिरमें आग लगा दी गई थी। समझमें नहीं आता, तुर्क कब इधर आये।' अब मालूम होता है, ग्य-ल्ह-खङ्का पहला नाम

ग्यल्-खङ् (राजगृह) था। वहांका पाषाण-स्तम्भ भी इस बातकी पुष्टि करता है। 'तुर्कों'से वहांके लोगोंका मतलब मंगोल लोगोंसे ही है। मंगोलियाकी ओरसे आनेवाली सेनाका रास्ता भी तो इधरसे ही था।

रे-डिङ्से चलते वक्त आकाश मेघाच्छन्न था। आगे चलनेपर बूँदाबांदी भी शुरु हुई। रास्तेमें एक-आध जगह चमरीके हलोंसे खेत जोते जाते देखे, यह शायद हमारे यहांके माघ-पूसकी जुताईकी भांति खेतको अधिक उपजाऊ बनानेके लिए होगा। बारह बजे हम फिर फुन्-दोके घाटपर पहुँचे। उतरनेमें बहुत देर न लगी। उस दिन फुन्-दो हीमें रहना था।

सूतग्-लुङ्से लिये दोनों आदमियोंको छोड़ना था, इसलिए एक आदमीकी ज़रूरत थी। गंदन्-छों-कोरके लिए ६॥ साङ् (प्रायः २॥=) तय हुआ। सीधे जानेसे दो दिनका ही रास्ता है। आज लम्बी मंज़िल थी और छ-लाकी बड़ी जोत्‌को पार करना था, इसलिए सात बजे ही रवाना हुए। आख़िरी पांच मीलके रास्तेको छोड़ बाक़ी पहले ही वाला रास्ता था। नये रास्तेमें रिन्-छेन्-अग् (रत्नशिला) मठ मिला। हमारा नया नौकर जल्दी गंदन्-छों-कोर् पहुँचाकर लौटना चाहता था, इसलिए वह नाककी सीधपर आगे-आगे खच्चर ले जा रहा था। सामने एक पहाड़पर कुछ स्तूपों-सहित एक मठ देखा। उसने समझा, यही जोत है, और दोनोंं लेकर तीन बजे वहां पहुंच

गया। पूछनेपर मालूम हुआ, यह तो अग्-र्यंव् ( पृष्ठ शिला ) विहार है। इस मठका संस्थापक अग्-र्यंव्-प्, डोम्-तोन्के शिष्य पो-तो-प ( १०२७-११०४ ई० ) का समकालीन था। इस प्रकार मठकी प्रथम स्थापना ग्यारहवीं सदीमें हुई थी; पर उस समयका मठ कुछ नीचे था। आजकल इस मठ में एक अवतारी लामा रहता है। इससे पहलेका तीसरा लामा बड़ा सिद्ध समझा जाता था। उसीकी समाधिवाले घरमें हम लोगोंका आसन लगा। समाधि नहीं, एक छोटेसे स्तूपके अन्दर लामाका मृत शरीर ही पद्मासनासीन रखा हुआ है। इस प्रकारके सुरक्षित रखे मृत शरीरको यहांवाले मर्-दोङ् कहते हैं। मर जानेपर शरीरको नमकके भीतर रख दिया जाता है। दो महीनेमें शरीर सूख जाता है। फिर शरीरपर एक प्रकारका लेप करके स्तूपमें रख दिया जाता है। किन्हीं-किन्हीं स्तूपोंमें छोटे छिद्र रखते हैं, जिससे लोगोंको लामाका दर्शन होता है। हमारे पासके मृत लामाके स्तूपका छिद्र काफ़ी बड़ा है। हमने लैम्पकी रोशनीमें फ़ोटो लेनेकी कोशिश की; देखें, सफलता हो तब।

ल्हासा, १०-८-३४

परसों शामको मुझे ल्हासा लौट आना पड़ा। मैंने एक सप्ताह और बाहर ही रहनेका विचार किया था। पो-तो, गंदन्-छो-कोर, येर्-वा जैसे मठ तथा भोट-सम्राटोंके समयके दो पाषाण-स्तम्भोंको देखना ज़रूरी था; किन्तु परसों सवेरे हमारे

सो-नम्-ग्यं-जेपर फिर पागलपन आ गया । उसने और जगह जानेसे इनकार ही नहीं कर दिया, बल्कि वह अपनी लम्बी तलवार-पर हाथ रखने लगा। भोटमें वैसे भी मनुष्यका प्राण बहुत मूल्य नहीं रखता, और यह आदमी तो मन्-खम् प्रदेशका रहनेवाला है, जहांपर लोग मृत्युसे खेल करते हैं । इन्हीं कारणोंसे दीर्घ और कठिन चढ़ाई चढ़कर, प्रायः तीस-बत्तीस मीलकी दौड़ लगा, ८ अगस्तको मैं ल्हासा चला आया ।

तुम्हारा—राहुल सांकृत्यायन

# द्वितीय खण्ड

## चाङ्की ओर

गङ्
८-९-३४

*प्रिय आनन्द जी,*

८ अगस्तको फेन्-बोसे लौटकर ल्हासा पहुँचे। उससे पहिले-की बात पिछले पत्रमें लिख चुके हैं। इस एक महीनेमें कोई बड़ा काम नहीं किया। सिर्फ 'साम्यवाद ही क्यों' को समाप्त किया। पहिले ल्हासा जानेका इरादा था, किंतु फेन्-बोके प्रांतमें जानेसे हमारे फोटोग्राफ़र-नातीलाने एकदम मन ढीला करदिया। हमारे पास किताबोंके फ़ोटो लेनेका केमरा नहीं। केमरा तो है किन्तु वह ग्यांचीमें पड़ा है। कोई आने वाला आदमी नहीं मिला कि उसे यहां लावे। दूसरे सभी पुस्तकें जो यहां हैं, बिना भोट सर्कारकी आज्ञाके देखनेको मिल नहीं सकतीं। रिजेंट और महामन्त्रीने कहा भी कि पत्र शीघ्र भेजदेंगे, किंतु वह नहीं ही मिला। उसकी उतनी आशा भी न थी। यदि मिलेगा, तो ग्यांची भेज देंगे। ल्हासाके लिये खच्चर भी नहीं मिला। इस प्रकार इस वार सम्-ये नहीं जाना हुआ।

ग्यांचीके लिये एक सज्जन चार तिथियों तक वादा करते रहे, आखिरी तिथि उन्होंने बहुत विश्वास दिलाकर ९ सितम्बर मुकर्रर की किंतु कल पूछनेपर मालूम हुआ, अब ज़रूर ११ सितम्बरको

भेजेंगे। खच्चर के मालिक भोट के एक सरदार हैं तौभी यहाँ के लोगों में तो यह बात आदत में शामिल हो गई है। आखिर में कल ही पक्का निश्चय कर लिया था, ग्यांची चल देने के लिये। छु-सिन्-शर् वालों को चार खच्चर देने के लिये कहा। खच्चरों की हिफाजत के लिये डे-पुङ्-मठ का एक भिक्षु चलने को तैयार हुआ। हम और गे-शे चलने को तैयार। आज सवेरे पहिले तो मंगोल भिक्षु मुश्किल से तैयार हुआ। फिर मिलने पर बोला—मैं विहार से कपड़ा-लत्ता ले कर रास्ते में तैयार रहूँगा। खैर! हमने खच्चरों को कसने को कह दिया। छु-सिन्-शर वालों ने वह काम फेन्-पो यात्रा में तलवार उठाने वाले सो-नम्-ग्यंजे को दे दिया। हमें पहिले ख्याल न हुआ। उसने छु-सिन्-शर के बारह खच्चरों में एक बूढ़े, एक लंगड़े, दो और भी करीब करीब वैसे ही कस दिये।

६॥ बजे सवेरे ल्हासा छोड़ा। शहर से बाहर निकल कर देखा, तो मालूम हुआ, खच्चरों की मुंहेड़ी भी नहीं और न रात को बांधने की रस्सी। हमारे खच्चर पर तो उसने नीचे का मोटा गद्दा भी नहीं लगाया, जिसके बिना खच्चर की पीठ जल्द कट जाती है। हमने लंगड़ी खचरी को कुछ दूर तक साथ में चलने वाली दूसरी खचरी से बदलना चाहा, जिसका विरोध छु-सिन्-शर के दूसरे खच्चर नौकर ने किया। बहुत

आग्रह देखने पर वह लौट गया, और उसने जाकर सो-नम् ग्यंजे से कहा। हमलोग ङे-पुङ् बिहार के नीचे वाले गांव डे-पुङ् से आने वाले भिक्षु के इन्तिजार में रहे। इतने ही में सो-नम-ग्यंजे दूर से ही बाँह चढ़ाते आया। उसके पास तलवार भी थी। हम हट गये, वह लाल खच्चर लेकर लौट गया। पहिले इरादा था साथ में भेज कर ल्हासा से छु-सिन्-शर से दूसरा खच्चर मँगावें, फिर छु-सिन्-शर वालों की भी कठिनाई का ख्याल आया। दूसरे खच्चरों के खिलाने वाले आदमी का भी पता नहीं। अन्त में सोच विचार कर छु-सिन्-शर् के खच्चरों को लौटा देने का निश्चय किया। संयोग से उसी वक्त कुछ गदहेवाले आ गये, उन्होंने तीन गदहों पर हमारा सामान लाद लिया। ब्रह्मपुत्र की धार तक के लिये किराया ठीक हुआ। आज ल्हासा से दस मील पर इस गाँव में ठहरा। ब्रह्मपुत्र के नेप्-शो-ला पर बहुत डाके पड़ रहे हैं। इधर भी रास्ता खतरनाक है, तौभी ल्हासा में वेकार बैठे रहने से चलना ही अच्छा। साथ में प्रयाग और पटना म्युजियम् की चीजें भी हैं। खतरा बहुत अधिक है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं। मैं और चित्रकार धर्मवर्द्धन दो ही हैं। उनके पास एक पिस्तौल और एक छोटी तलवार है। और भी लिखता, किन्तु बहुत लिखने का मन नहीं कर रहा है। पैदल चलने से थक भी गया हूँ।

तिव्बत में गदहे-वालों का कायदा खच्चर वालों से अलग ही है। जहाँ खच्चर वाले ९—१० बजाकर चलते हैं, वहाँ गदहेवाले दो तीन घंटा रात रहते ही चल देते हैं। गदहे वाले गाँव में ठहरना भी नहीं चाहते, क्योंकि वहाँ उन्हें चारे के लिये दाम देना पड़ता है। हम लोग, चाहते नहीं थे, कि पटना और प्रयाग के म्युजियम् की चीजों तथा अपनी जान को लेकर गाँव से दूर पड़े रहें। खैर! हमारे गदहेवाले बड़े ही भलेमानुस निकले। इनाम अकराम देने पर भी यदि तिव्वत में आदमी भलेमानुस निकल जाय तो उसका शुक्रगुजार होना चाहिये। उन्होंने हमारी बात मान कर ही गङ् के गांव में रहना स्वीकार किया था।

गङ् से दो घंटा रात रहते ५॥ बजे ही चल पड़े। यद्यपि शुक्ल पक्ष की परिवा होने से रात अंधेरी थी, तौभी तारे काफी उजाला दे रहे थे। ल्हासा ३१ अक्षांश उत्तर है, इसलिये उत्तर ओर ध्रुव तारा उतना ही ऊपर क्षितिज में दिखलाई पड़ रहा था। एक बार मृगशिरा के खटोले ने अपनी ओर ध्यान आकर्षित किया और दिल ने चाहा एक बार अपने परिचित तारों की ओर ख्याल करें, किन्तु वह तो ठहर कर ही हो सकता था। हाँ! सूर्योदय से पूर्व ही पूर्व की पहाड़ियों पर एक प्रकाशमान तारा दिखलाई पड़ा, जो शायद शुक्र था, उसने पर्याप्त रोशनी दी। जानते हो हम तिव्बत की रात को सफर कर रहे थे, जहाँ

कि दिन को भी अकेले दुकेले आदमी की जान जाना बिल्कुल मामूली बात है। ९॥ बजे हमारे गदहे ल्हासा वाली नदी के तट पर ठहराये गये। उन्हें पहाड़ पर घास चरने के लिये छोड़ दिया गया और हम लोग भी अपनी पेट-पूजा में लग गये। धूप बड़े कड़ाके की थी। छाता लगाये विना गुजारा न था। राहगीर ने कहा—"आपका साथी मंगोल भिक्षु आगे जा रहा है, वह पूछ रहा था—'खच्चर पर चढ़े भारतीय भिक्षु क्या आगे मिले ?' अब मालूम हुआ कि—जिन्हें हमने खच्चरों के लिये ठीक किया था, खच्चरों के लौटा देने पर भी वह हज़रत आगे बढ़ते जा रहे हैं।

हम लोग दो बजे फिर रवाना हुए। कुछ धूप भी थी और इधर शरीर में थकावट मालूम हो रही थी। हिम्मत तो खैर अब भी पैदल चलने के लिये थी, किन्तु प्यास बहुत लग रही थी। शाम को दूजड सूमड् गांव में पहुँचे तो बुखार आ गया। रात को कुछ नहीं खाया। मकान वैसे अच्छा था, किन्तु बत्ती बालने के बाद ही से शरीर का कोई कोई भाग चुन चुनाने लगा। पहिले उधर ख्याल नहीं गया। सब लोग सो गये। हम भी लेटे। अब सारे शरीर में चुनचुनाहट हो रही थी। उठने में आलस सी थी। लेटे लेटे सोच रहे थे—पिस्सू हैं या खटमल ! किन्तु और देर तक मन बहलाव करना मुश्किल था। टार्च उठाकर देखा—दीवार—सिरहाने और दाहिनी बगल

दोनों ही लाल चलित बिन्दुओं से सुशोभित हो रही है। आ खटमल दादा! तुम पहुंच गये! हाथ को बदन की एक चुन-चुनाहट पर फेरा तो मालूम हुआ, पिस्सू भी। अब क्या किया जाय। थोड़ा सा ज्वर भी था ही, तौभी हमने खुली छत पर सोना ही अच्छा समझा। संघवर्द्धन को भी नींद नहीं आ रही थी। जगाया और अपना बिछौना ले छत पर पहुंचे। तौभी, बिछौने ओढ़ने में काफी दोनों जाति के सज्जन चले आये थे, इसलिये रात को नींद अच्छी तरह नहीं आयी।

हाँ। ज्वर के आगमन से यह मालूम हो गया था, कि कल पैदल नहीं चला जायगा। खोजने पर छु-सुर् भर के लिये एक घोड़ा मिल गया। ल्हासा से चलते वक्त कु-शो तन्दर (ल्हासा के तार अफसर) को सूचित कर दिया था, फिर खच्चरों को लेकर लौटने वाले सुखयोगी से भी सब बात कह देने को कह दिया था। छु-सुर् के तार-घर (यहाँ लाइन देखने के लिये टेलीफोन मात्र है) में पहुंचते ही मालूम हुआ कि कुशो तन्दर ने फोन कर दिया था और यहाँ के सज्जन ने कल सवेरे के लिये दो घोड़े भी तैयार कर लिये हैं। किन्तु हमें तो आज ही चल देना था। ज्वर के आते ही अब ख्याल होने लगा, शीघ्र से शीघ्र आगे पहुँचने का। ऐसा न हो की कहीं रास्ते ही में रुक जाना पड़े। खाने की तो भूख नहीं थी और ज्वर भी था। तोभी शरीर में ताकत कायम रखने की भी अत्यन्त

आवश्यकता थी। नहीं तो दो बड़ी बड़ी जातों को पार कर आगे पहुँचना, हंसी ठट्ठा नहीं। उसी समय भगवान् कृष्ण-चन्द आनन्दकन्द के वचनानुसार परम सात्त्विक शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं का ध्यान आया। दूध में मिलाया तो गया चार स्वेत सालिग्रामों को किन्तु हम तिहाई दूध भी नहीं पी सके। दो बजे रवाना हुये, एक दूसरे घोड़े पर। थोड़ा ही आगे बढ़नेपर कोन्-चोग् लौटते मिले। मालूम हुआ, वह सब घाट तक पूछने गये थे। बड़ा अफसोस हुआ कोन्-चोग् की परेशानी के लिये। उसको कुछ पैसा दिया, कुछ सान्त्वना की बात कही, फिर कोन्-चोग् ल्हासा की ओर, और हम आगे की ओर। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर दिल में व्यथा होने लगी—कोन्-चोग् को कुछ और पैसा देना चाहिये था। बड़ा ही भलामानुस था। लेकिन अब तो वह दूर चला गया था।

रात को से-म-थोब्गाँव में रास्ते ही पर ठहरे। कल रात के अनुभव ने बतला दिया था कि घर में रहने से पेड़ के नीचे रहना अच्छा है। पेड़ के नीचेही डेरा पड़ा और बड़े आराम से सोये।

हाँ! यह मालूम होना चाहिये की छु-सुर् से डेढ़ मील चल कर हम दूसरे रास्ते जा रहे थे। पहिले हमारा जाना खम्-वा-ला (जोत) से हुआ था। बरसात में छु-वो-रि के दास का छक्-सम् घाट बंद हो जाता है, क्योंकि नदी की धार का वेग और विस्तार

बढ़ जाता है, और उसमें काठ का चौकोर डोंगा नहीं चलाया जा सकता। छु-वो-रि ( पहाड़ ) को उस पार देखा । यह खास भारत से आया पहाड़ है ऐसा सभी भोटवासियों का विश्वास है। और हम भारतीयों को भी देशभक्ति के नाते उसे स्वीकार ही करना चाहिये। इस पर्वत की उसी तरह परिक्रमा की जाती है, जैसे चित्रकूट की। इसके चारों ओर एक सौ आठ विहार, एक सौ आठ चैत्य और एक सौ आठ चश्में बतलाये जाते हैं।

११ दिसम्बर (१९३४) को फिर रात रहते ही चल दिया। कुछ देर पर रास्ते में दो महान् स्तूप दिखाई पड़े। अनुराधपुर के रत्नमाल्य जितने तो नहीं, तो भी बहुत ऊँचे हैं। दिन होता तो और देखते और फोटो भी लेते। ये बिल्कुल बे मरम्मत हैं। आगे व-खोर का मठ मिला, फिर छोस्-स्कोर-यङ्-चे का बहुत ही विशाल विहार जिसके पास में सफेदे के कितने ही बड़े बड़े बाग भी हैं। इन विशाल मठों और उनके निवासी भिक्षुओं को देख कर चित्त को खेद होता है। भोटवासियों को उन्होंने ही बहुत से दुर्गण सिखलाये हैं। भोटवासियों के लिये तब तक भले दिनों की आशा नहीं, जब तक यह इतनी संख्या में मौजूद रहेंगी। दाल में नमक स्वाद का बढ़ाने वाला होता है, किन्तु उसका खास परिमाण है। यदि दाल के भाग को भी नमक ही ने ग्रहण कर लिया, तो फिर वह दाल क्या खाने की रहेगी।

आगे रास्ते में चलते एक पत्थर का खम्भा मिला। भोट सम्राटों के लेख-स्तम्भों के बारे में कुछ जानकारी होने से तुरन्त ही पहिचान लिया, और गौर से देखने पर दो ओर कुछ पंक्तियां भी दिखायी पड़ीं। छापा लेने भर के लिये समय न था।

९ बजे ब्रह्मपुत्र के धार पर पहुँचे। घंटे भर के इन्तिजार के बाद चमड़े की नाव (=क्वा) मिली और पार हुए। गांव में तीन वजे तक रहना पड़ा, तब नम्-प शिवा के लिये दो घोड़ों और दो बैलों का इन्तजाम हुआ। रहने के लिये एक बड़े जमीन्दार के यहाँ इन्तिजाम हुआ। एक आदमी ने अपनी फूली नाक की दवा मांगी। टिङ्चर-आयडीन लगा दिया। फिर क्या था, उस पांच छः घर के गांव से पांच छः मरीज आ पहुँचे। तीन औरतों के फोड़े फुन्सियों का असल कारण तो आतशक था। तिब्बत में, खासकर भारत और ल्हासा के बीच के रास्तों में यदि कोई डाक्टर आये तो उसे सबसे अधिक रोगी गर्मी और सुजाक के मिलेगें।

आज सवेरे सात बजे हम ञ्बब-शो-ला की ओर चला। पहिले आसान चढ़ाई ने उत्साह बढ़ाया, किन्तु आगे फिर दांत खट्टे होने लगे। साथ ही आज वर्षा भी होने लगी। भोट देश की जोतें तो खून और डकैती के खास स्थान हैं। बड़ी सावधानी से जाना पड़ता है। ञ्बब-शो-ला की चढ़ाई कड़ी है और दूर तक है। धर्मवर्द्धन को ऊंचाई के कारण हिचकी सी आने लगी। हमने कहा एक अंडा निकाल कर खाओ।

खाने के साथ ही बंद हो गई। जोत पर पहुँच कर हमें एक ओर बीरी और सफेदे के वृक्षों वाली ब्रह्मपुत्र उपत्यका दिखाई पड़ रही थी, और दूसरी ओर वृक्षों से सर्वथा शून्य नीलम जैसे पानी वाला युम्-डोक् सरोवर की तटी। इधर उतराई बहुत दूर तक समान सी है। फिर कुछ कड़ी सी। हम तो आज सारी उतराई पैदल ही आये। दो दिनों तक प्रायः उपवास ही रहा। हाँ, शरीर में शक्ति रखने के लिये कल ही एक दर्जन अंडों का फलाहार हुआ था, और आज भी चलने से पूर्व तीन। उन्होंने काफी ताकत दी। आज रात को भात बनवा कर खाया, साथ में कुछ सूखी मछलियों का सालन था। अन्न मीठा लगा।

५॥ बजे शाम को पे-दे-जोड़ पहुँचे। तार घर (यहाँ भी टेली-फोन मात्र) पहुँचने पर मालूम हुआ, कृपालु कु-शो तन्-दर् ने यहाँ भी मदद देने के लिये सूचना दे रक्खी है। यहीं यह पत्र लिख रहा हूँ। मालूम हुआ, कल नङ्-गर्-चे से सर चार्ल्स बेल् यहाँ आ रहे हैं। वह सम्-ये आदि को देखने के लिये इस वृद्धपन में भी विलायत के आराम को छोड़ कर आ रहे हैं। हो सकता है, कल रास्ते में भेंट हो। चार दिन में ग्यांचे तो पहुँच सकते, किन्तु यदि सवारी बार-ब्रदारी का प्रबन्ध होता तब ना। आज इतना ही।

× × × ×

न-ग-र्चे १३-९-३४

युम्-डोक् सरोवर की यह उपत्यका बहुत ठंडी है। ऊँचाई १४००० फीट से क्या कम होगी। इसीलिये यहाँ सर्दी से बचने का काफी इन्तिजाम करना पड़ता है। हम लोग आज भिनसारे छ बजे ही चल पड़े। वैसे सीधा रास्ता होता तो न-ग-र्चे तीन, चार घंटे से अधिक का रास्ता, हमारे सुस्त साथियों के लिये भी न था, किन्तु झील की एक घुमाव के साथ एक बड़ी दुम एक ओर बढ़ जाती है, जिससे ६-७ मील का चक्कर पड़ता है। इस दुम के साथ आगे को ट-शी-ल्हुन्-पोका रास्ता गया है। प्रायः एक दिन आगे जाने पर रोङ् प्रदेश है, जहाँ पर ११ वीं सदी में भारतीय पंडित सूक्ष्म-दीर्घ कितने ही समय तक रहे थे। यहीं के डक्-पा नामक परिवार में १५ वीं शताब्दी के ३५ सुन्दर चित्रपट हैं। बहुत इच्छा तो थी जाने की, किन्तु चित्र लेने का केमरा ग्यांची में पड़ा है।

जाड़े के दो महीनों तक झील जम जाती है, फिर लोगों को इस दुम की परिक्रमा करनी होती है।

हमारे घोड़े नम्-प-शि-व तक के लिये थे। जब वह एक मील करीब रह गया तो सर चार्ल्स बेल् और उनके साथी मिले।

अपने ही उन्होंने घोड़े को खड़ाकर दिया और कहाँ से आते हैं, किस काम से गये थे पूछा। पहिले वह हिन्दी ही

में बोलते रहे। मुझे कितनी ईर्षा हो रही थी। कहाँ यह सत्तर वर्ष का मुट्ठी भर हाड़ हिमालय के इन दुर्गम पहाड़ों को पार करने की हिम्मत कर रहा है, और कहाँ हमारे नौजवान। इसमें शक नहीं उनके पास पचीसों घोड़े गदहे सामान हैं, और नौकर भी, किन्तु वह तो हमारे धनी नौजवान भी कर सकते हैं; उनसे हिमालय की कठिनाइयाँ शून्य के बराबर नहीं की जा सकती। बेल साहेब को तिब्बत वाले बेल्-लुन्-छेन् कहते हैं। लुन्-छेन् भोट शासक दलाई-लामा के बाद दूसरा पद है। इस पदवी को सर चार्ल्स के मित्र स्वर्गीय दलाई लामा ने प्रदान की थी। सर चार्ल्स ने जब दलाई लामा के मरने के पहिले एक बार फिर तिब्बत और ल्हासा देखने की इच्छा प्रकट की, तो उन्होंने स्वीकृति दे दी। सर चार्ल्स अपने पुराने मित्र को न देख सके इसका अफसोस उन्हें जरूर होगा। उनके साथ चल-चित्र लेने का केमरा भी है। बेल साहेब की दो पुस्तकें पहिले भी तिब्बत के लिये सबसे अधिक जानकारी देती हैं। इस यात्रा से भी बाहर की दुनियाँ को तिब्बत के बारे में बहुत कुछ जानने को मिलेगा। सर चार्ल्स ने कुछ रुपये देने चाहे, जिसे मैंने धन्यवाद पूर्वक अस्वीकार कर दिया।

प्रायः बीस मिनट तक घोड़े पर चढ़े ही चढ़े बात करके हम लोगों ने अपना अपना रास्ता लिया।

नम्-प-शि-व के चो-ला (भाई जी) ने ग्यांची के लिये खच्चर न देने के बहाने खोज लिये। आखिर चार घण्टे विश्राम के बाद न-ग-र्चे तक का प्रबन्ध कर दिया और हम यहाँ पहुँच गये। कु-शो तन्दर की सूचना के अनुसार यहां के भी तारघर वाले सज्जन ने रहने आदि का प्रबन्ध कर रखा था। घोड़े भी मिल ही जाते यद्यपि कुछ महँगे। किन्तु, सौभाग्य से आज नेपाल—राजदूत ग्यांची से यहां पहुँचे और उनके पहुंचाने वाले घोड़े आसानी से मिल गये। परसों तक ग्यांची पहुँच जांयगे।

× × × ×

ग्यांची
१६-९-३४

कुछ तरद्दुद तो हुआ, किन्तु न-ग-र्चे से रा-लुङ् के लिये चार घोड़े मिल गये। किराया भी आठ आना घोड़ा के करीब पड़ा। घोड़े वाले नेपाली वकील के पहुँचाने के लिये बेगार में आये थे। आज ही उन्हें घर लौट जाना था, जो कि ३५, ३६ मील पर था। ५ बजे रात ही को अंधेरे में हमें कूच कर देना पड़ा। चलने के वक्त भी आसमान में बादल छाये हुए थे। सुबह होते होते तो बूँदें भी पड़ने लगीं। हम लोग चौदह हजार फीट के ऊपर जा रहे थे, ऊपर से बूंदा बांदी, फिर सर्दी क्यों न लगे। हमको ज्यादा चिन्ता थी

म्युजियम् की चीजों और पुस्तकों की। हमारे घोड़े वालों की चले, तो वह उसे दैवपर छोड़ दें। किन्तु हमने आग्रह करके उन्हें बरसाती और नमदा से ढंकवाया। पहाड़ के ऊपरी हिस्से पर उसी समय वर्फ पड़ रही थी। १० बजे के बाद तक यही समा रहा। साढ़े ग्यारह बजे के करीब हम खा-रू ला जोत् पर पहुँचे। ल्हासा से ग्यांची तक पांच पांच मील पर सरकार ने डाकियों के लिये घर बनवा दिये हैं। एक डाकवाले का घर जोत से बिल्कुल लगा हुआ है। १६००० (सोलह) हजार फीट पर यह मकान है। इतनी ऊँचाई पर रहनेवाले तथा पैदा होने वाले आदमियों पर उसका असर जरूर होता है। आजकल ही यहाँ हाथ पैर ठिठुर जाते हैं, फिर जाड़ों की बात ही क्या, और ये लोग बारहो मास यहीं रहते हैं !!

हम लोगों के पहुँचते ही डाकिया की अधेड़ स्त्री ने, जो अपने पति से उम्र में दूनी से क्या कम रही होगी, आकर हमारे घोड़ों को पकड़ा। घर की छत बहुत नीची है और वह सारी धूयें से काली है। हम लोगों के आसन पर बैठते ही उसने आग वाल दी। चाय की देग्ची चढा दी। हमारे हाथ पैर सुन्न हो रहे थे। थोड़ी देर में गर्माहट पैदा हो गई। बिस्कुट और न-ग-र्चे से लाये सूखे भेड़ के मांस का फलाहार शुरू हुआ। खौल जाने पर खूब आडे हाथ मक्खन डालकर चाय बनाई गई और फिर लगे प्याले ढलने।

भोजन और विश्राम कर हम फिर चले। और ४ बजे शाम को रा—लुङ् के तार-खङ् में पहुंच गये। हम सोच रहे थे, यहां पर भी कोई चो-ला होगा। किन्तु पूछने पर एक स्त्री ने कहा—मैं ही तार भेजने वाली हूँ। उनको कु-शो तन्दर के अतिरिक्त न-गर्चे के बाबूला ( बाबू जी ) ने भी हमारे बारे में फोन कर दिया था। इस वक्त घोड़े तैयार न थे, अन्यथा आज ही (१७—९—३४) हम रा—लुङ् मठ हो आते।

रा—लुङ् का तार—खङ् पुरानी . चीनी चौकी में है। चीन से तिब्बत निकलजाने पर उनकी बहुत ही कम चीनी इमारतें रख छोड़ी गईं। शत्रुता के कारण सभी को भोटिया लोगों ने नष्ट भ्रष्ट कर दिया। रा-लुङ् भी काफी ठंडी जगह है, यह तो इसी से मालूम है कि उसके बहुत नीचे तक कोई वृक्ष नहीं जम सकता। रात को ग्यांची के लिये चार घोड़ों की बात चलने लगी, तो भी कोई निश्चय न हो सका। इतना पक्का हुआ था, कि कल हम लोग रा-लुङ् मठ देखने जायेंगे।

सबेरे ( १५-९-३४ ) चार घोड़े ठीक हुए। हम लोग दो घोड़ों पर रा-लुङ् मठ की ओर चले, जो कि तीन मील से कुछ ऊपर है। रास्ता बहुत चढ़ाई का नहीं है। इस मठ को तेरहवीं सदी के आरम्भ में द्योन्-रस्-धर्म-दोर-सेङ् ( ११७७-१२३६ ई० ) ने स्थापित किया था। इसका सम्बन्ध

विक्रमशिला के सिद्ध नाडपाद के शिष्य मर्-वा के कर्-ग्युंद्-पा सम्प्रदाय से है। हमें किसी ने बतलाया था, रा-लुङ् मठ में तालपत्र की पुस्तकें तथा कुछ पुरानी मूर्तियां मिल सकती हैं। हम नौ बजे के करीब मठ में पहुंचे। मठ पहाड़ के मैदान में है। इस मठ की विशेषता यह है कि यहाँ भिक्षु और भिक्षुणियां दोनों एक साथ रहते हैं। और दोनों अधिकतर इसी मठ में पैदा हुए हैं। कौन किसका पुरुष और कौन किसकी स्त्री इसका बड़ा कोई कड़ा नियम नहीं है। भिक्षु ७० के करीब होंगे और भिक्षुणियाँ सौ से अधिक। भिक्षुणियाँ बाल-निकली एक प्रकार की लाल टोपी लगाती हैं, जो खोपड़ी सी चिपटी शिर की भांति ही होती हैं। पुराना मठ किसी समय अच्छा बना था। इसमें दो तल्ले हैं। भीतर के खम्भे भी अच्छे हैं। किन्तु नीचे से ऊपर तक आजकल बिच्छू घास सुखाई जा रही है। इतना पुराना बिहार होने पर भी लकड़ी की सीढ़ियों का न घिसना बतला रहा था, कि यहाँ बहुत दर्शनार्थी नहीं आया करते। हमारे पास समय बहुत कम था, क्योंकि आज ही हमें ग्यांची के लिये रवाना होना था, इसलिये पुजारियों और पुजारिनियों के आते ही हम दर्शन के लिये चल दिये। नीचे के तल में चार देवालय हैं। इसमें एक में मैत्रेय, दूसरे में बुद्ध और बांकी दो में और पीतल की मूर्तियां हैं। मूर्तियां सुन्दर हैं। दीवारों पर किसी समय सुन्दर चित्र थे, जो मिट चुके हैं।

बहुत सी छोटी छोटी मूतियां ऊपर के दो देवालयों में मुहर के साथ बंद करके रक्खी गई हैं। रा-लुङ् के लामा शुरू से ही सिद्ध होते आये हैं, इसलिये साधनों के लिये उन्हें महामुद्रा की परम आवश्यकता ठहरी। पहिले के बहुत से लामों की पीतल की मूर्तियां ऊपर के एक देवालय में हैं।

हमने तालपत्र और मूर्तियों के सम्बन्ध में पूछा। मालूम हुआ, तालपत्र तो है ही नहीं, और मूर्तियां भी बिकाऊ नहीं हैं। भिक्षुनियों का आग्रह ठहरने का था किन्तु शीघ्र हम घोड़े पर सवार हो लौट पड़े। तार-खङ् में पहुँचने पर ११ बज गये थे। सामान वाले घोड़े अभी ही रवाना हुए थे। एक प्याला चाय पी, ईंधन आदि का दाम एक साङ् चुकाया, और फिर रवाना।

बर्सात के कारण जगह जगह रास्ता खराब हो गया है और कहीं खड़ी चढ़ाई चढ़नी पड़ती है, तो कहीं खड़ी उतराई। पहिले हम बात कर रहे थे, आज ही ग्यांची पहुँचने की, किन्तु अब वह दूर की बात थी। हां, हम लगातार चलते गये। रास्ते में दो बार वर्षा भी आयी, और हमारे ऊपर के कपड़े भी भीग गये। एक जगह नदी के आर पार सुन्दर इन्द्रधनुष उगा था। सौन्दर्य अद्भुत था। मालूम होता था दो पहाड़ों के स्तम्भ पर रङ्ग बिरंगा मेहराब लगाया गया है। अपने केमरे में रंग न आने के ख्याल से दिल मसोस कर रह गया। आजकल सभी जगह खेत काटे जा रहे थे। काटने वाले स्त्री पुरुषों की गीत से

सारी उपत्त्यका गूंज रही थी। और जगह देखने में आता है, कि भिन्न भिन्न ऊँचाई पर फसल भी भिन्न भिन्न समय पर पकती है, किन्तु आज ल्हासा, न-गर्चे और इधर एक साथ ही पक गई है। कारण शायद शरद का आगमन है। सर्दी से अब वृक्षों की पत्तियां पीली पड़ने लगी हैं।

आखिर हम गोब्-शि के उस स्थान पर आये, जहाँ राजनाथ की खचरी ने ठोकर खायी थी, और वह एक चट्टान पर छाती के वल गिर गये। छाती में इतनो चोट आयी कि थोड़ी देर तक वह अर्ध मूर्छावस्था में रहे। उस समय उनसे और मृत्यु से चार अंगुल का फ़ासिला था। यदि उतनी ही चोट छाती की बाईं ओर लगती, जिधर कि कलेजा है, तो बस खातमा था। पहिले फ-री के पास भी खचरी के भड़कने से वह गिर पड़े थे। उस समय रस्सी की रिकाव उनके एक पैर में फंस गई। खचरी जोर से भागती गई। प्रायः दो फर्लाङ्ग तक वह घसिटते गये। संयोग से भूमि वरावर सी थी उसमें पत्थर न थे, और अचानक राज-नाथ के हाथ के खचरी के पैर में पड़ने से वह गिर पड़ी। उस वक्त तो मृत्यु से कुछ मिनटों का फ़ासिला था। पहिली घटना से चिन्ता में पड़ गया था। फ-री पहुँचने पर उनके एम्० ए० का परिणाम मालूम हुआ कि वह प्रथम श्रेणी में प्रथम हुए। बतलाओ! यदि कोई अनिष्ट हो जाता, तो दिलमें सदा के लिये कैसा एक कांटा सा चुभा रहता। और उन माता पिता और बेचारी

स्त्री की क्या दशा होती ? मेरा दिल तो यह सब सोचने में आज भी घबराने लगता है। यही कारण था, ल्हासा पहुँचने से पहिले ही मैंने निश्चय कर लिया था कि किसी अच्छे साथी के मिलते ही उन्हें लौटा दूँगा। छु-सिन्-साके मालिक साहु ज्ञान मान जब नेपाल लौट रहे थे, तब मैंने राजनाथ के संकोच का कुछ भी न ख्याल कर उन्हें भारत लौटने की कड़ी सम्मति दी, और मेरी सांस तब तक ऊपर टंगी सी थी, जब तक उनका तार कलिम्पोङ् से आ नहीं गया।

अंधेरा होते होते हम एक पाँच छः घर के गाँव छँवा में पहुँचे। कुत्तों के हांव, हांव ने हमारा स्वागत किया।

१६ को सवेरे ही सामान धर्मवर्द्धन के साथ छोड़ हम आगे चल पड़े और साढ़े आठ बजे ग्यांची पहुंच गये। १।। मास की डाक पड़ी थी। तुम्हारा भी पत्र था और जगदीश का भी। उत्तर में छत्तीस चिठियाँ लिखनी थी। रात को तीन बजे तक जागते रहे। कल ही "विज्ञप्ति" के आये प्रूफ को भी देख डाला। आज सभी चिट्ठियाँ, ल्हासा में संग्रह की गयी चीजों के २२ पार्सल डाक में डाले जांयेगे। हां, श्री प्रशान्तचन्द्र चौधुरी I. C. S. ने पुस्तकों के फोटो के लिये एक अच्छा केमरा और बारह दर्जन फिल्म भेजे हैं। अब स-क्य की यात्रा में उन्हें ले जाना है। शायद अखबारों में तुमने गृध्रकूट को खोज निकालने वाले श्री चौधरी का नाम पढ़ा होगा। पंजाब में हिन्दी

के प्रथम पुजारी श्री नवीनचन्द्र राय की पुत्री श्री हेमन्त कुमारी चौधरानी को तुम जानते ही हो, प्रशान्तचन्द्र उन्हीं के पुत्र हैं। वंशानुगत गुण जानते हो हो। पिता से पुत्री में और उससे फिर उनके पुत्र में तिर्छी चाल से चलता है, इस प्रकार चौधरी महाशय में गुण जरूर आने चाहियें। वह विद्वत्ता के साथ बड़े विद्याव्यसनी हैं। और सबसे उत्तम बात तो यह है, कि अभी तक उन्होंने विवाह की फांसी अपने गले में नहीं डाली।

× × × ×

टशीबु
२३-६-३४

प्रिय आनन्द,

प्राय: एक सप्ताह की प्रतीक्षा ग्यांची में करनी पड़ी। वहाँ से संगृहीत चीज़ों को पंडित व्रजमोहन व्यास (प्रयाग म्युज़ियम्) और जायसवाल जी (पटना म्युज़ियम्) के पास डाक से भेज दीं। ग्यांची में जितने दिन रहे, ज्वर और कब्ज की शिकायत बनी रही। दोस्तों ने सलाह दी, यहाँ रह कर अस्पताल की दवा कराके चंगे होकर फिर जाइये। मैंने कहा—"जाड़ा सिर पर आ रहा है। दरख्तों की पत्तियाँ पीली पड़ रही हैं। दवा कराने का मतलब है सबसे आवश्यक जिन मठों का दर्शन है, उससे वंचित हो जाना। चलने पर बीमारी अपने दूर

होती रहेगी।" जितनी ही हम जल्दी कर रहे थे, उतनी ही खच्चरों के मिलने में देरी हो रही थी। आखिर दूने से भी ऊपर किराया देने पर तीन पाङ्-डे ( गदही में घोड़े की औलाद ) मिले।

कल ९ बजे हम लोग रवाना हुये। पहिले तीनवार नदी के बायें से गये थे, अबकी बार हमने दाहिनेका रास्ता लिया। सरकारी डाक का रास्ता भी इधरसे ही है। आज हमें स्पोस्-खङ्-ञोग्-पा पहुंचना था। धर्मवर्धन के खच्चर की पीठ पर न चारजामा था, और न लगाम। एक बार तो उन्होंने हिम्मत ही हार दी। खैर, कहने सुनने से फिर सवार हुये। पोङ्-डे देखने में छोटे मालूम होते हैं किन्तु बड़े मजबूत हैं। ३ डाक से अधिक चल कर १८ वीं मील से हमारा रास्ता दाहिनी ओर घूमा-स्पो-खङ् का मठ २१ मील से कम न होगा। हम लोग शाम होते होते पहुँच गये। लामा द्बु-म्ज़द् ल्हासा में मिल चुके थे। स-क्या-पो भिक्षुओं को अब तक मैंने सहृदय पाया था। यहाँ के भिक्षु बु-स्तोन्-पा होने से स-स्क्य-पा की एक शाखा ही हैं। लामा ने अच्छा स्वागत किया।

यद्यपि वक्रमशिला के अन्तिम नायक कश्मीरजन्मा महापंडित शाक्यश्रीभद्र यहाँ स्वयं नहीं आये थे, किन्तु पीछे उनकी परम्पंरा के कोई लामा पुरानी वस्तुओं को लेकर यहाँ आ गये। मुझे पता लगा था, कि यहाँ कुछ तालपत्र की

पुस्तकें हैं, और उन्हीं के लिये यह प्रयास था। लामा से पहिले मतलब ही की बात की। उन्होंने कहा पुस्तकें अवश्य सवेरे मिलेंगी। श्री प्रशांतचन्द्र चौधुरी का भेजा केमरा और बारह दर्जन फ़िल्म ग्यांची में मिल गये थे।

यहाँ, ग्याँची से इतने समीप इतनी प्राचीन वस्तुयें देखने को मिलेंगी, यह आशा बिल्कुल न थी। सवेरे कायदे के मुताबिक, ८ साङ् (दो रुपये से कुछ अधिक) अर्पण कर चीज़ों के दर्शन की अनुमति माँगी। आठ बजे तीनों पुस्तकें आ गईं। एक पुस्तक में तो प्रज्ञापरमिता (अष्टसाहस्त्रिका, व्याकरण,) तथा कुछ और पुस्तकों के कितने ही पत्रे थे। दूसरी पुस्तक का तालपत्र अधिक सुरक्षित है। इसमें कुछ सर्वास्तिवादीय सूत्रों पर सर्वास्तिवादी शाक्य भिक्षु अश्वघोष की टीका है। इसीमें अश्वघोष की परिकथा है। पुस्तक खंडित है। इन दोनों तालपत्र की पोथियों के अतिरिक्त एक पोथी कागज पर है। जो संवत् १३१० में लिखी गई थी। पोथी में मैत्रेयकृत मध्यान्तविभंगकारिका, मध्यान्तविभंगसूत्र और अभिसमयालंकार हैं। अभिसमयालंकार को आचार्य शेरवास्की सम्पादित कर चुके हैं, इसलिये बाकी दो पुस्तकों के फोटो लिये। पुस्तकों के फोटो का यह प्रथम प्रयास है, इसलिये सफलता के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। पत्तों के रखने का अच्छा चौखटा न होने से फोटो लेने में काफी देर हुई। समझा था, मंदिर देख कर चल देना

होगा। विहार में गये। यहाँ महास्थविर शाक्यश्रीभद्र की एक छोटी सी आसीन मूर्ति है, जो उनके सामने ही बनाई गई थी, ६, ७ अंगुल से बड़ी न होगी। नाक तोते जैसी और बहुत बड़ी है। चौखटे में मढ़ी एक देवी का चित्र भी है। जिसे यहाँवाले खास नागार्जुन के हाथ की बतलाते हैं। मूर्ति के दाहिने हाथ में त्रिशूल, नीचे सिंह और बाईं ओर एक स्त्री मूर्ति है। यह चित्र भारतीय है, इसमें तो संदेह नहीं। सब का फोटो लिया।

इतना हो जाने पर समझा था, अब काम समाप्त हो गया, और खच्चरवाले सज्जन को कह भी दिया, खच्चर तय्यार करो, किन्तु हमारे मित्र ने कहा—अभी लामा के पास चलना है। दो तीन चाय के प्याले मुँह में डाले होंगे, कि दो चमड़े से मढ़ी पेटियाँ रख दी गईं। अब भी हमारा ध्यान उधर आकर्षित न हुआ था। फिर एक पेटी खोलकर धीरे से एक चित्रपट हमारे पास के खंभे पर टाँग दिया गया। नजर उधर पड़ते ही मैं तो चिहुँक पड़ा। अरे, यह तो भारतीय चित्र है!! बारहवीं सदी का!! अमोघपाश लोकेश्वर का सुन्दर चित्र। आकृति कुछ त्रिभंगी। केमरा बन्द कर चुके थे; किन्तु, धर्मवर्द्धन की भी राय हुई, जरूर फोटो लिया जाये। यदि समय होता तो धर्म-वर्धन को कापी करने के लिये कहता।

फिर उसी बक्स में से, मदारी की झोली की भाँति एक एक चीज निकलने लगी। यह क्या?—यह शाक्य श्रीभद्र के

तीन चीवर हैं। रङ्ग भूरापन लिये हुए लाल। बुनाई, सिलाई बारीक। यह क्या ? यह विक्रमशिला के उस महास्थविर का भिक्षापात्र। लोहे का, आकार में, मझोला भीतर सफेद कलई सी। इसीमें लोहे के फँदे पर मढा जल-छक्का भी है। और यह ?—यह उनका जूता है। एकही है। सारा कपड़े का बना, पनही के आकार का। किनारों पर और नीचे काले रंग की वार्निस सी। जिस वक्त मैं यह पवित्र चीजें देख रहा था, मेरे शरीर के रोम खड़े हो रहे थे। इसी वक्स में तत्कालीन भोटदेशीय कुछ आचार्यों के भी जूते, भिक्षापात्र तथा दूसरी चीजें थीं। महास्थविर शाक्यश्रीभद्र १२०३ ई० में आकर तिब्बत में ८ वर्ष रहे थे।

फोटो लेने के लिये बाहर जाने के वक्त दूसरी लम्बी पेटी को बन्दही देखी। मालूम हुआ, इसमें चित्रपट हैं। खोलने पर वह तो दो दर्जन से भी अधिक निकले। इतना समय भी न था। मैं तो कुढ रहा था, क्यों मैंने यहीं तक का किराया नहीं किया। आखिर, आँख मूंदकर उसमें से एक चित्र धर्मबर्धन ने, एक मैंने और मेरे परिचित लामा ने निकाले। ओहो ! कितने सुन्दर चित्रपट हैं !! तिब्बत के बने, किन्तु, भारत की पूरी छाप। जरूर यह चित्र चौदहवीं शताब्दी से इधर के नहीं हो सकते। ऊपर छतपर जाकर दो तीन फोटो लिये, और फिर मित्रों से बिदाई ली।

चार बजे पोइ- खङ्-छोग्-पा (यही उच्चारण है,) मठ से विदा हुये। भोट देश की यात्रा की कठिनाइयों से चित्त हिचकता तो जरूर है; किन्तु फिर भी एक बार यहाँ आने की हिर्स लेकर ही विदा हुआ। सूर्यास्त के कुछ पूर्व रास्ते के एक गाँव में पहुँचे। और यहीं ग्य-गर-लामा (भारतीय गुरु) ने रात को बसेरा किया।

× × × ×



शि-ग-र्चे

२५-९-३४

ट-शी-लुंपो ११। घंटा रात रहते ही चल दिये, क्योंकि आज सात डाक्-खङ् ( ३५ मील ) के करीब चलना था। खच्चर ने एक दो जगह बोझे को पटक दिया, और फिर से लादने में अधपौन घंटे चले गये। आजकल खेतों की कटाई है। लोग भिनसार ही से लग जाते हैं, इसलिये उनके शब्द जहाँ तहाँ सुनाई देते थे। पूर्णमासी होने से चन्द्रमा सोलहों कला से उगे थे। चन्द्रमा के सामने होने से हमें उन्हींका प्रकाश दिखाई पड़ता था। एक बार पीछे मुड़कर देखा, तो पहाड़ों की पीछे उषा की किरणें छिट रही थीं। सन्देह होने लगा—सूर्य के उग आने पर भी क्या चन्द्रमा इतना ही चमकता रहेगा। दोनों के चमकने पर एक बात होगी—हमारी छाया सिमटकर दोनों पैरों के नीचे

छिप जायेगी। इसी तरह के फजूल के ख्याल दिमाग में चक्कर काट रहे थे।

आठ बजे के करीब मीलों लम्बी खेती को पार हो, हम पे-ना-जोङ् के नीचे पहुँचे। जोङ् ( किला ) पहाड़ की बाँही पर बना है। दूर से देखने पर वहुत सुन्दर मालूम होता है। नीचे गाँव है, जो किसी समय वहुत बड़ा रहा होगा। भोट की तवायफुल्मलूकी के जमाने में यहाँ भी कोई राजा रहा होगा। रास्ता गाँव के भीतर से है। वाँही की दूसरी ओर पहुँचने पर फिर दूर तक फैले हुये खेत दिखलाई पड़े। खेत कितने ही कट गये हैं। कटे हुये अनाज का डंठल समेत खेत में ही गंज कर दिया गया है। किन्हीं किन्हीं खेतों में गेहूँ की लाल मुंडी वालें अब अभी खड़ी हैं। काम करते वक्त गीत गाने का शौक तिव्वत में आम है। एक खेत में पुरुष के सहित सिर्फ एक स्त्री काट रही है। देखा वह भीं तान ले रही है।

कुछ मील और पार किये। एक गाँव आया। और फिर खड्ग विषाणकल्प एकचारिणी छोटीसी पहाड़ी के ऊपर से नीचे तक ग-दोङ् का मठ पड़ा। दूर से देखने पर तो तिव्बत के मठों की इमारतें इन्द्रभवन को भी मात करती हैं। मठों के लिये क्या कहना है? ग्यांची से शि-ग-र्चे ६० मील से अधिक नहीं है। किन्तु नदी की दोनों ओर के मठों की संख्या सौ से अधिक बतलाई जाती है। सिवाय लोगों कीं मेहनत की कमाई को

स्वाहा करने के इनसे लोगों को यदि कोई फायदा हुआ है तो वह है मिथ्याविश्वास और मिथ्या-आचार का भरपूर प्रचार।

दस वजे के करीब ३, ४ घरके एक टोले में पहुँचे। यहीं चाय पानी करने को सलाह हुई। सफेदे और वीरी की छोटी सी बगीची में उतर पड़े। आड़े हाथ मक्खन डालकर केसरिया चाय तय्यार की गई। खाने के लिये चूरा निकाला, तो दाँत ने कट किया। अब पत्थर को कौन चवावे। और था सतू और सूखा मांस। सत्तू चाय-चीनी-मक्खन डालकर चमड़े की थैली में मसला गया। फिर भेड़ की पिछली सूखी टाँग का टुकड़ा हमारी ओर बढ़ाया गया। चाकू से काट काटकर खाना शुरू किया, और पेट भर खाया। यह लिखना शायद भूल गया, कि इस यात्रा में कच्चे सूखे मांस के खाने का मैंने पूरा अभ्यास कर लिया है। पिछली फेन् वो की स्मरणीय यात्रा में तो कई दिन तक हमारे मित्र ना-ती-ला छोटे छोटे टुकड़े कर सुखाये चँवरी के मांस को खिलाते रहे। हम समझते थे, यह भेड़ का मांस है। साथ का मांस खर्च हो गया, तो रे-डिङ्-के पहिले के ल्ह-दोङ्-खङ् में उनने कहा—सूखा मांस खतम हो गया, यहाँ ताजा मांस मिल रहा है। हमने कहा—ले लो, दो टाँग काफी होगा। उन्होंने कहा—नहीं, इतना क्या होगा? ४ साङ्-का ले लेते हैं। खरीदकर आया, देखते ही मैं तो डर गया —अरे, यह तो चंवरी का मांस है। दोस्तों ने कहा—चंवरी

का ही सूखा मांस तो इधर खाते रहे हैं। कुछ न पूछो, मुझे कहानी याद आगई। बलिया जिले के नये बने आचारी बाप-बेटे मद्रास की ओर तीर्थ करने गये थे। एक दिव्य-देश में पहुँचे। दर्शन करके जाते वक्त लोगों ने कहा—जाते कहाँ हो, ठहरो, गोष्ठी (भोजन-गोष्ठी) होगी। पुंगल् लेकर जाना। बेचारों ने समझा—पुंगल कोई भारी प्रसाद होगा। रात के वक्त अँधेरी शाला में कुछ टिमटिमाते चिराग जल रहे थे, बेचारे देख न सकते थे। हाथ में पुंगल डाल दिया गया। पहिले लड़के ने गफ्फा मारा, और चिल्ला उठा—अरे बाबू.....धरम लेलें हो। अरे! ई त खिचड़ा हौ। बेईमनवाँ पुंगल पुंगल् कहत वाड़ें।

हमने नातीला से उलाहना दिया; किन्तु उन बेचारों का क्या दोष? नेपाली लोग तो चँवरी को गो जाति के भीतर गिनते ही नहीं। हमारे पुराने भारतीय कोषकारों से पूछा जाता, तो वह भी "चमरी मृग" ही कहते। हमने कहा—धर्म चला गया। चमरी और गायके संयोग से होने वाली सन्तान का यदि आगे भी वंश चला सकता है, तो वह गो-जाति-बाहर हो ही नहीं सकती। अब क्या करें? कितना अच्छा होता, यदि मेरे कहे मुताबिक धर्मबर्धन ल्हासा से बाराह भगवान का कुछ शरीर-भाग लाये होते। फिर मेरा हिन्दूपन इतने दिनों तक मुझसे अलग तो नहीं होने पाता। लोगों ने भात और चमर-मांस पकाया था। कुछ सवेरे के लिये भी रख

दिया। मैं रात को बहुतेरा समझाता रहा—जाने दो, अब तो हो गया। शायद सोने की लालच से या कैसे मन उस समय सहमत सा जान पड़ा। सवेरे जब थाली सामने आई, मन में कान में धीरे से इतना ही कहा—कै हो जायगी। आखिर, बाकी यात्रा निरामिष ही हुई।

हाँ, तो सूखे मांस और सत्तू का भोजन हुआ।

मेजबान् बूढ़े-बूढ़ी ने अपनी काच की मालायें ग्य-गर लामा के सामने पेश की, कि वह उन पर फूँक मार दें, जिसमें जप अधिक पुण्यदायक हो। धर्मबर्धन की सिफारिश और अधिक माथापच्ची से बचने के लिये वैसा ही करना पड़ा।

धर्मबर्धन भी पहिले से ही कुछ नास्तिक हैं, और बाकी कमी मेरे साथ पूरी हो जायगी। २१वें वर्ष तक अपने जन्म-प्रदेश अमन्दा में वह अवतारी लामा के तौर पर रहे। पीछे उसे छोड़ बैठे। कहते थे—तिब्बत के लोगों में लामों के लिये भयङ्कर श्रद्धा है। लोग श्रद्धा के मारे उनका मूत्र तक पीते हैं। यह सत्तू या किसी और चीज़ में डाल कर गोली के रूप में बाँटा जाता है। मैंने पूछा—और पाखाना? बोले—मिले तो वह भी। पिछली यात्रा से लौटने पर एक दिन बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने यही बात पूछी थी। भनक उनके कान तक पहुँच चुकी थी। किन्तु न जानने के कारण मैंने उसे झूठ

बतलाया था। पिछले दिसम्बर में दलाईलामा मरे थे। उनका शरीर कई महीनों तक नमक के भीतर रखा गया था। ल्हासा में सुना था—वह नमक-प्रसाद चुपके चुपके कितने ही लोगों के प्राप्त हो चुका है। उस नमक को एक कनिका से लोक परलोक के कितने ही पाप कट सकते हैं। बड़ी बड़ी बीमारियाँ दूर हो सकती हैं।

चायपान के बाद चले। सामने पोङ्-गू-शर ला (जोत्) दिखलाई पड़ रहा था, इसे ला नहीं लाई (जोत्नी) कहना चाहिये। बहुत ज्यादा चढ़ाई उतराई नहीं है। फिर कुछ ही आगे पोङ्-गू-चु ब्-ला मिला। बादल उमड़ रहे थे। दूर टशी-लुन्पो के काले पहाड़ों पर बिजली भी कौंद रही थी; किन्तु हमारे पुण्यके प्रताप से वह हमारे पास आकर हल्के झोंकों और थोड़ी सी फुहार के रूप में परिणत होगई। एक और बिना नाम के लोपका पार कर ट-शी-ल्हुन्-पो का मठ दिखाई पड़ा। ग्यां-ची वाली नदी के पुल के पास एक पहाड़ी है। मालूम होता है। जैसे अफ्रीका का हाथी सूंड आगे फैलाकर बैठा हो। पुल के उस पार ट-शी-लामा का उद्यानप्रासाद है। पूछने पर मालूम हुआ—उसका नाम कुन्-ख्याव्-लिङ्-का है। मैंने कहा—लङ्-छेन्-लिङ्-का (गजोद्यान) नाम कहीं अधिक सार्थक होता।

सूर्यास्त होते होते शि-ग-र्चे पहुँच गये। मामूली दिक्कत के बाद साहू मानबहादुर चन्द्रबहादुर की दूकान मिल गई।

डेरा पड़ गया। शाम और रात को चाय पीने से मैं परहेज किया करता हूँ, क्योंकि उससे अधिक लघुशंका होती है। तो भी आज आग्रहवश कुछ प्याले चढ़ाने पड़े, यह जानते भी कि ऊपर छत पर, जहाँ पेशावखाना है, पास में एक काला कुत्ता बंधा हुआ है। रात को पेशाव लगी। जाने की हिम्मत न हुई। आखिर सारी अपूर्ण और दवी इच्छाओं को पूरा करने ही के लिये तो स्वप्न की सृष्टि है। रात को स्वप्न देखा,—छत पर जा रहे हैं, और काला कुत्ता जंजीर तुड़ाकर ऊपर कूदना चाहता है।

आज सवेरे ट-शी-लुन्-पो विहार में गये, जो कस्वे से लगा हुआ है। पहिले वुशहरी रघुवीर को खोजना था। आसानी से मिल गये, और साथ लेकर मन्दिरों के दर्शन के लिये चल दिये। पहिले टशी-लामा से चौथे टशी-लामा तक के शवागारों को देखा। कुछ और को भी। फिर ट-शी-लुन्-पो के सबसे बड़े पंडित सम्-लो-गे-शे ( योन्-तन् ) के पास पहुँचे। यह हमारे धर्मवर्धन के स्वदेशीय हैं, और दोनों एक दूसरे के नाम से परिचित हैं। कुछ देर बात हुई। फिर फोटो खींचा। ग्यारह वजते वजते आसन पर लौट आये।

सलाह तो थी, आज वहुत सवेरे चलने को, किन्तु सात बजे से पूर्व हम नहीं चल सके। ग्यांची से आये खच्चरों को ही दो दो साङ् पर दो दिन के लिये किराया किया। अपनी पहिली

यात्रामें शि-ग-र्चे से श-लु तक की बात लिख आये हैं, इसलिये उसे दोहराने की जरूरत नहीं। रास्ते में एक घंटा खच्चरों को चरने के लिये छोड़ा गया। और साढ़े ग्यारह बजे हम लोग श-लु मठमें दाखिल हुये। अपने पूर्व परिचित रि-सुर्-रिम्पो-छे के पास पहुँचे। ४।। वर्ष बाद भी उन्होंने झट पहिचान लिया। दिल खोल कर स्वागत किया। अपनी तीन पुस्तकें—अभिधर्म-कोश, भोट-भाषा को प्रथम पुस्तक, और भोटभाषा-व्याकरण उन्हें भेंट की। फिर तीन घंटे तक बीच-बीच में चायपान के साथ बातें होतो रहीं। मैंने कुछ ही मिनट बाद पूछ डाला—यहाँ तालपत्र की कितनी पुस्तकें हैं ? तुम जानते ही हो, पिछली यात्रा में "वज्रडाकतंत्र" की तालपत्र की पुस्तक इन्हीं लामा ने प्रदान की थी। रि-सुर्-रिन्-पो-छेने मेरे प्रश्न के उत्तर में कहा—हाँ, कुछ तालपत्र की पोथियाँ यहाँ के गुहामठ में हैं। यहाँ के खन्-पो आचार्य और चार लामा से भी पूछना पड़ेगा। उन्होंने तुरन्त आदमी भेज दिया, और यह पक्का ठहरा, कि कल सबेरे मील भर दूर वाले विहार से वह पुस्तकें यहाँ लाई जायें, जिसमें मैं यहीं पढ़कर काम की पुस्तकों का फोटो ले सकूँ। धर्मकीर्ति के न्यायसम्बंधी महान्ग्रंथ—प्रमाण-वार्तिक का अन्तिम अनुवाद संशोधक इसी मठके लो-च-व धर्मपालभद्र (जन्म १५२७ ई०) थे। हम लोग सोच रहे थे—क्या इन पोथियों में प्रमाणवार्तिक की मूल प्रति नहीं हो सकती ? अगर

कहीं हो जाये, तब तो यहाँ फोटो पर विश्वास नहीं करना होगा। लग कर उसे उतार कर ही चलेंगे। खैर यह बात तो कल की है।

दो बजे विहारके दर्शन के लिये निकले। श-लु, विहार को १०४० ई० में जे-चुन्-शे-रब-ब्युङ्-ग्नस् ने स्थापित किया था, इस प्रकार यह मठ आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज के पुराने मठों से कई सौ वर्ष पुराना है। मठ किसी समय अच्छी उन्नत अवस्था में थे। जिस मठ में तिब्बत का सबसे महान् विद्वान् बु-स्तोन्-रिन्-छेन्-ग्रुब् (१२९०-१३६४ई०) शिष्य हुआ हो, उसकी विशेषता के बारे में क्या कहना? अब भी यहाँ के पुराने चार ड-सङ्- (कालेज) उनके चार खन्-पो (Dean,आचार्य) मौजूद हैं, तो भी अब उसकी पुरानी श्री चली गई है। तीन सौ के करीब भिक्षु हैं, किन्तु उनमें पढ़ने लिखनेवाले कम ही हैं। विहार एक ऊँची दीवार से घिरा, मैदानमें अवस्थित है। जैसा कि तिब्बत के सभी पुराने विहारों के बारेमें देखा जाता है। इसी दीवार के भीतर दक्षिण की ओर शा-लु गाँव के गृहस्थों के भी घर हैं। पुराना विहार—रे-डिङ् वाले रास्ते के स्तग्-लुङ् विहार की शकल का लाल रंग की पत्थर की ऊँची दीवारों का है। इसके बीच में आँगन था, किन्तु खम्भों को खड़ाकर उसे शाला का रूप दे दिया गया है। सभी दर्शनीय चीजें इसीके भीतर हैं। प्रधान द्वार पूर्व की ओर है। द्वार के सामने भी आँगन और ओसारे हैं।

द्वारके भीतर घुसते ही गोन्-खङ् है। मठके रक्षक देवताओं का देवालय है। इसमें तरह तरह के चेहरे वीभत्स देवमूर्तियाँ, तथा पुराने अस्त्र शस्त्र टंगे हैं। भीतर पहुँचकर दीवारों पर यत्र तत्र और पुराने कुछ नये चित्र देखे। फिर दक्खिन ओर के कन्-जुर् देवालय में गये। इसमें हाथ के लिखे तीन कन् जुर् हैं। स्नर्-थङ्-छापे सबसे पुराना कन-जुर् भी इसी में है। तीनों काल के तीन बुद्ध भी यहां हैं। कुछ पुराने पत्रे हमने मूर्त्ति के पीछे फेंके देखे। पढ़ने पर मालूम हुआ, वह बहुत पुराने हैं। फिर हम पच्छिम ओर के दो मन्दिर—जो-खङ् (स्वामिगृह), और हयग्रीव मन्दिर तम्-डिन्-( ल्ह-खङ ) में गये। पहिले में भगवान् बुद्ध की सुन्दर मूर्ति है। इसीमें अवलोकितेश्वर खसर्पण की भी मूर्ति है। दूसरे में दीवार के सहारे कितनी ही विशालकाय बोधिसत्त्व की मानव मूर्तियाँ हैं। इसी में हमारे मित्र रि-सुर्-रिन्-पो-छेके प्रथम अवतार का चैत्त्य है। इनमें कुछ पीतल की मूर्तियों में कुंडे लगे हुये हैं। लोग बतलाते हैं वह भारत से आई हैं, किन्तु चौड़े ललाट को देखकर वह नेपाल की मालूम होती हैं। फिर हम उत्तर ओर के गो-सुम्-ल्-खङ् में गये। इसमें तीन दर्वाजे हैं, इसीलिये इसका यह नाम पड़ा है। इसीमें मठ के संस्थापक का चित्र पश्चिम की दीवार पर है।

दक्षिण-पश्चिम-उत्तर के देवालयों की भीतर से एक परिक्रमा है। हम इस सँकरी परिक्रमा में घुसे। देवालय की ओर की

दीवार में तो हजारों बुद्ध के चित्र हैं, किन्तु बाहर की ओर की दीवार पर जातक कीसी बहुतसी कथायें चित्रित हैं। जगह जगह उनके नीचे लेख भी हैं। चित्र सुन्दर हैं। भारतीय पात्रों को भारतीय कपड़ों में चित्रित किया गया है। इन चित्रों को कर्म-पा-लामा रङ्-ब्युङ्-दों-र्जे (१२८४-१३३९ ई०) की पुस्तक के अनुसार अंकित किया गया है। इनका समय १४ वीं सदी का अन्त हो सकता है। गेस-लाइट का प्रबंध होता, तो फोटो लेने की कोशिश भी करते।

अब हम दूसरे तल पर पहुँचे। नीचे वाले मन्दिरों पर ही पाँच मन्दिर ऊपर भी हैं। पूर्व ओर के मन्दिर में सीमेंट की बहुत सुन्दर मूर्तियाँ हैं। कपड़े की तहको बहुत बारीकी से बनाया गया है। बीच में प्रज्ञा-पारमिता की मूर्ति है, और अगल बगल अनेक बुद्ध मूर्तियाँ। कहते हैं—दीपंकर श्रीज्ञान जब इस मन्दिर में आये, तो उन्होंने जौ का अच्छत चढ़ाया था, जिसका एक दाना अब भी प्रज्ञापारमिता की एक आँख में मौजूद है। इस मन्दिर की परिक्रमा की दीवारों पर भी सुन्दर चित्र हैं। दक्षिण वाली दीवार पर चित्रकारों ने अपना नाम (ऽछमस्-प-) बसोद्-नमस्-ऽबुम् लिखा है। तिब्बत में चित्रकारों के जीवन और इतिहास की ओर अब तक लोगों का ध्यान नहीं गया। यदि तिब्बत में ज्ञान कभी सार्वजनीन वस्तु होगी, तो विद्वानों को इस ओर बहुत करना होगा।

दक्षिण ओर के मन्दिर में दीवारों पर तरह तरह के मडल चित्र हैं। मूर्तियों में बुद्ध और मैत्रेय की खड़ी पीतल की मूर्तियाँ बहुत सुन्दर हैं। बुद्ध की मूर्तियों में चीवर पहिनने का वही ढंग है, जो वर्मा के भिक्षुओं में आज भी पाया जाता है। बायें हाथ में उसी प्रकार चीवर का एक छोर पड़ा हुआ है। ऊपर ही एक मन्दिर में १६ स्थविरों की मिट्टी की मूर्तियाँ हैं। कलाकार ने हर एक मूर्ति के व्यक्तित्व को अलग निर्मित करने की कोशिश की है।

साढ़े चार बजे मन्दिर-दर्शन समाप्त हुआ। फिर श-लु की परिक्रमा करने निकले। पास के वृक्षों की तीन चौथाई पत्तियों को पीला देखकर झट याद हो आया-जाड़ा आ गया। तो भी काम अधूरा तो छोड़ना नहीं है। आज यहीं पता लगा, शि-ग-र्चे से आधे दिन के रास्ते पर ने-री मठ में भी एक तालपत्र की पुस्तक है। खोजने पर तिब्बत में कितनी ही काम की संस्कृत पुस्तकों का मिलना संम्भव है; लेकिन सवाल है—उनके लिये उतनी परेशानी उठाने को कितने तैयार हैं।

शाम को बु-स्तोन् के अवतार से मिलने गये। आयु ३० वर्ष की होगी। मिलने में बड़ी नम्रता प्रकट की।

रि-सुर-रिन्-पो-छे के पास स्मृतिज्ञानकीर्ति की एक छोटी सी जीवनी देखी। तुमको लिखना भूल गया, कि तिब्बत में आकर आठ वर्ष चरवाही करने वाले इस भारतीय पंडित की मैं एक

कहानी लिख रहा हूँ। ११। अंक समाप्त भी कर चुका हूं। इस जीवनी से मालूम हुआ, इन मस्तमौला को उनका मालिक अबू ल्होद्-लेगस् कहता था। और शायद ताँ-नग् के और लोग भी उन्हें इसी नाम से पुकारते थे। धर्मवर्धन ने स्मृति का भेड़ चराते वक्त का एक चित्र भी बनाया है, जो कहानी के साथ छपैगा।

शि-ग-र्चे
२८-९-३४

तालपत्र की पुस्तकें प्रधान विहार से कुछ हटकर पहाड़ के भीतर वाले विहार ( रि-फुग् ) में हैं यह पहले बतला चुका हूँ। ग्यारह बजे के करीब पुस्तकें वहाँ से आईं। फिर कल चार बजे तक उन्हें देखते ही रहे। पुस्तकों में छ लिपियों—पुराण कश्मीरी (शारदा), रञ्जन, तीन प्रकार की वर्तुल—का व्यवहार किया गया है। तिब्बत में सुरक्षित भारतीय ग्रन्थों की सूची विहार-ओडीसा रिसर्च-सोसाइटी के जर्नल भाग २१ वें में छपी है।

पुस्तक देखने से पहिले मैंने पूछा था—क्या और भी पुस्तके हैं। एक ने उत्तर दिया—अभी बहुत हैं। किन्तु साथ के आदमी ने कहा—नहीं हैं। असल बात क्या है, वह तो नहीं कह सकता, किन्तु पूछ-ताछ से जान पड़ता है, अभी और भी कितनी ही पोथियाँ हैं। लामा महाशय ने कहा—एक घर भरकी पोथियों को लाना पड़ेगा। अभी हमारे पास इतने

आदमी नहीं हैं। भोटिया दूसरे महीने (चैत) में हम ताल-पत्र की पुस्तकों को अलग करेंगे। उस वक्त पुस्तकों की संख्या और जिन पर भोटभाषा में नाम होगा, उसे भी आपको सूचित करेंगे। यह लोग तो समझते हैं—ग्य-गर्-लामा हर वक्त भोट में आता रहेगा। सारी दिक्कतों का इन्हें पता नहीं। इस प्रकार बाकी पोथियों को नहीं देख सका। बड़ा अफसोस है। विशेषकर इसलिये कि वहाँ धर्मकीर्ति* के प्रमाण-वार्तिक के मिलने की सम्भावना थी। क्योंकि उसके अनुवाद का अन्तिम संस्करण श-लुके ही एक ली-च-व ने किया था।

पाँच बजे के करीब कुछ पत्रों के फोटो लिये। दोनों अव-तारी लामों—रि-सुर्-रिन् पो-छे और बु-स्तोन्-रिन्-पो-छेका पुस्तकों के साथ फोटो लिया। वस्तुतः ऐसी जगहों पर फोटो लेकर वहीं धो भी लेना चाहिये, किन्तु ईंजानिव पुस्तकों की लालच से पिछले साल से ही अधकचरे फोटोग्राफर बने हैं। धोना सीख भी लिया जाये, तो भी उसके लिये जगह और सामान का ढोना आसान नहीं है।

रि-सुर्-रिन्-पो-छे की बात पर विश्वास होता है, क्योंकि उन्होंने पिछली बार व्रज्रडाकतंत्र की ताल-पत्र की पुस्तक की दी

* १९३६ की तृतीय यात्रा में इस मठमें २७ तालपोथियां मिलीं जिनमें प्रमाण वार्तिक मूल के तीन परिच्छेद तथा संपूर्ण ग्रन्थ की एक सुन्दर टीका भी शामिल हैं।

थी, जिसे तुमने लंका में देखा था। उन्हें मैंने कह दिया है—मेरा आना तो मुश्किल है, किन्तु मैं एक भारतीय तरुण को यहाँ भेजने का विचार कर रहा हूँ।

आज सबेरे कश्मीर के पंडित शाक्यश्रीभद्र (११८७-१२२५ ई०, विक्रमशिला के अन्तिम नायक) की एक पुरानी मूर्ति का फोटो लिया। रि-सुर्-रिन्-पो-छे ने अपने तीन घोड़े हमें शि-ग-र्चे तक पहुँचाने के लिये दिये, और आठ बजे सबेरे हमने शु-लु-विहार को उसके इस भारतीय निधि की रक्षा के लिये प्रणाम किया। रि-सुर-रिन्-पो-छे को पूरी आशा है, कि हम फिर भोट में आयेंगे।

बारह बजे दोपहर को हम शि-ग-र्चे लौटे। यहाँ से ५-६ घंटे के रास्ते पर ने-रि स्थान के एक विहार में दो ताल-पत्र की पुस्तकों का पता लगा है; किन्तु जाने-आने की दिक्कत और समयाभाव के कारण उसे छोड़ दिया जाता है*। अब सलाह है, चौथे दिन यहाँ से प्रस्थान करें। पहिला मुकाम ग्यन्-थङ् (स्थापित ११५६ई०) में पड़ेगा, और वहाँ की पुरानी चीजें देखी जायेंगी। वैसे कल परसों ही चल देते, किन्तु वहाँ की चीजों के दर्शन के लिये यहाँ से हाकिम की मुहर ले

*१९३६ की यात्रा में वहाँ जाने पर देखा, वहाँ तालपत्र की एक पाली पोथी है जो तीस वर्ष पूर्व भारत से आये किसी सिंहल यात्री से लेकर वहाँ पहुँचाई गई है।

जानी पड़ती है, जो कि परसों ही मिलेंगी। यहाँ से ३-४ घंटे के रास्ते पर है। वहाँ पर भी कुछ ताल-पत्र की पुस्तकों का पता लगा है। फिर ३-४ घंटा और चलने पर ङोर् मिलेगा, जहाँ के एक परिव्राजक ने बतलाया—ङोर में ताल-पत्र की पुस्तकें सौ से भी अधिक होंगी। वहाँ ३,४ दिन ठहरना पड़ेगा। और पुस्तकों की जाँच पड़ताल करनी होगी। प्रमाण वार्तिक मिला, तो केमरे पर भरोसा न करके उसे लिखना पड़ेगा। पुस्तकों को एक सूची भी बनानी होगी। फिर वहाँ से स-क्य जहाँ पर भारत से लाई पुस्तकें सबसे अधिक बतलाई जाती हैं; स-स्क्य से कलिम्पोङ और काठमांडव दोनों ही १५ दिन के रास्ते पर हैं। मन कह रहा है, शिवरात्रि में आने की अपेक्षा इसी वक्त क्यों न वहाँ चले चलो। खैर, इसका निर्णय स-क्य पहुँच कर ही होगा।

आनेवाले के लिये ट-शी-ल्हुन्-पो ही उचित स्थान मालूम होता है। भोट के प्रधान धर्माचार्य ट-शी लामा चीनसे लौटने वाले हैं। उससे विशेष परिचय होने पर पुस्तकों के अन्वेषण में सब प्रकार की सुविधा होगी। रघुवीर (रामपुरी) भी यहीं हैं, जिन्हें हिन्दी का अच्छा ज्ञान है। वह भोटभाषा में धर्मकीर्ति के प्रमाण वार्तिक को समाप्त करने जा रहे हैं। संस्कृत के पढ़ने का बड़ा शौक है। यहाँ के सबसे बड़े विद्वान् सम्-लो-गे-शे भी परिचित हो गये हैं। और सब से बड़ी बात यह है, कि ताल-पत्र के संस्कृत ग्रंथ यहीं आस-पास में हैं। —राहुल सांकृत्यायन

# तृतीय खंड

(१)

डोर

प्रिय आनन्द जी,

१-१०-३४

शि-ग-र्चे को आज छोड़ने का विचार था, किन्तु यहाँ तिब्बत में विचार भर ही करना अपने हाथ में है। घोड़े वाले ने कहा—"आज जाना हो, तो हम दे सकते हैं।" नहीं करने पर फिर कुछ दिन और यहीं बैठना होगा, इसीलिये कल तीन बजे शामको शि-ग-र्चे छोड़ना पड़ा। कुछ पहिले चलते, किन्तु कल का भोजन का निमंत्रण, ट-शी-ल्हुन्-पो मठ के क्यि-खङ्-ड-सङ् (कालेज) के खन्-पो (Dean) का था। पहिले सम्-लो-गे-शे के पास गये। यह ट-शी-ल्हुन्-पो के सबसे बड़े पंडित हैं। नैयायिक हैं। उन्होंने कहा—५३ वर्षका हो गया हूँ, तो भी पढ़ने का शौक़ पहिले ही जैसा है। पंडित को भेज दो, मैं उनका शागिर्द बनूंगा, वह मेरे। मुझे जो कुछ आता है, उन्हें पढ़ाऊँगा। भोजन का भी मैं प्रबन्ध करूंगा, फिर खन्-पो के पास बातचीत ही में दो बज गये। ट-शी-ल्हुपो मठ वहाँ से शुरू होता है, जहाँ शि-ग-र्चे कस्बा समाप्त होता है। इसलिये अपने स्थान पर पहुँचते देर न हुई। पता लगाने पर मालूम हुआ, सवारी के दो घोड़े तय्यार हैं, किन्तु सामान का खच्चर शामसे पहिले नहीं आयेगा। एक खच्चर के

लिये दोनो आये घोड़ों को कौन हाथ से जाने दे। अन्त में धर्म-वर्धन पैदल चलने के लिये तय्यार हो गये।

रात में खूब अंधेरा हो जाने पर हम नर्-थङ् पहुँचे। यदि कोई स्नर्-थङ् की कुछ पुरानी चीजों को देखना चाहता है। तो शि-ग-र्चे के अफसर से मुहर लानी पड़ती है। हम भी मुहर लाये थे, और उसे लौटाने के लिये एक आदमी को भी : आदमी ने रहने की जगह ढूंढ रक्खी थी, इसलिये टिकान ढूंढने की दिक्कत से बच गये। हमको आज कुछ ज्वर सा था, इस लिये बिछौना मिलते ही सो गये। धर्मवर्धन और दो और साथियों ने थुक्-पा ( यवागू ) पिया।

आज ( १ अक्टूबर को ) सात बजे हम देवालयों की ओर गये। यह मठ ११५३ ई० में ( अर्थात् शु-लु-से ११३ वर्ष बाद ) स्थापित हुआ था। स्थापक दीपंकर श्रीज्ञान के प्रप्रप्रशिष्य डोम्-तोन् के प्रप्रशिष्य पो-तो-पा के प्रशिष्य शर्-बा का शिष्य था। पहिले हम संघागार में गये। कुछ मूर्तियाँ और हस्तलिखित भोट पुस्तकें हैं। बाहर शाला में आसनों पर बैठे कुछ लड़के पाठ भी कर रहे थे, और हँसी ठट्ठा भी। हम ऊपर छतकी ला-मा-ल्ह-खङ् ( गुरुमन्दिर ) में गये। यहाँ के बहुत से पुराने गुरुओं की मूतियाँ हैं। कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ भी—जो बारहवीं तेरहवीं शताब्दि तक के हो सकते हैं—बुरी अवस्था में रक्खे हुये हैं। एक भीत पर एक बड़ा चित्रपट देखा। यद्यपि चित्र यहीं के हैं किन्तु एक पुराने

लामा ग्रो-सूतोन् अमृतकीर्ति का है; जिसका ढंग भारतीय है। कुछ इनाम देने की बात करने पर चित्रपट बाहर लाया गया, और हमने फोटो लिया।

फिर पास के डोल्-मा-ल्ह-खङ् (तारादेवालय) में घुसे। पीतल की थोड़ी सी मूर्तियाँ हैं। कुछ अच्छी भी माल्लुम हुईं; किन्तु यहाँ एक ऊँची चौकी पर रक्खी कुछ अस्त-व्यस्त चीज़ों ने चित्त को अपनी ओर अधिक आकर्षित कर लिया। देखा वहाँ बहुत से भारतीय मंदिर स्तूप हैं। गौर से देखने पर जान पड़ा, यह तो बोधगया-मंदिर का नमूना (Model) है। उठा कर देखने पर ज्ञात हुआ—कुछ चीजें लकड़ी पर हैं, और कुछ गया वाले तेलिया पत्थर पर। थोड़ी देर में अकल ने सुझाया—यहाँ दो नमूने हैं, एक पत्थर का, दूसरा लकड़ी का। पत्थर का नमूना पुराना है, और शायद भारत से ही यह लाया गया है। दूसरा उसीको देख कर पीछे भोटदेश में बनाया गया। लकड़ी वाले नमूने पर चीनी अक्षर लिखे हुये हैं, और पत्थर-वाले पर भोट अक्षर। दोनों को अलग किया। धूप में लाकर लकड़ी के पट्टे पर सजाया। पत्थर के नमूने में पूर्व, उत्तर, दक्षिण के तीन द्वार हैं, जिन पर अक्षर-संकेत हैं। एक चहारदीवारी पर छोटी मूर्तियाँ अवश्य भारतीय जान पड़ीं। अब बराण्डे में हमारे लिये आसन बिछा दिया गया। क्योंकि हमें अब मुहर-बन्द चीज़ों का दर्शन करना था, दो तीन बक्स लाये गये।

उनकी मुहर तोड़ी गई। और फिर हमारे सामने पुरानी चीजें लाई जाने लगीं। इनमें शर्-वा तथा दूसरे भोट देशीय आचार्यों के जूते थे। डोम् तोन् भी है, जिसका पच्छिम वाला कुछ हिस्सा लापता है। मन्दिर का बीचवाला गंधोला है, किन्तु कोने के चार शिखरों में दो अलग पड़े मिले। अन्य स्तूपों और देवालयों को उनके स्थान पर रखना असम्भव है; लेकिन मालूम होता है, पहिले यह सब किसी पट्टिका में जड़े हुये थे। जैसे तैसे रखकर उसका फोटो लिया। फिर लकड़ी के नमूने को भी उसी तरह रखकर फोटो लिया। लकड़ी का नमूना कुछ अधिक अच्छी अवस्था में है। यद्यपि इसकी भी चीजें स्थान-भ्रष्ट हैं। तुम्हें यह भी मालूम होना चाहिये, कि इसी मठ के एक लामा का भारतवृतान्त मुझे कुन्-दे-लिङ्ग मठ (ल्हासा) में देखने को मिला, और जिसकी नकल मेरे लिये की जा रही है। इस वृत्तान्त में बोधगया के वज्रासन विहार या बोधिमंड़ के भीतर जो जो स्तूप या देवालय उस लामा के समय थे, उनका विस्तृत वर्णन है।

इससे फारिग हो, हम कन्-जूर तन्-जुर के छापेखाने के ऊपर के मन्दिर में पहुँचे। वड़े मन्दिर में कुछ मूर्तियाँ तथा सुनहरे अक्षरों में लिखी कुछ पोथियाँ हैं। यहां भी हमारी गृध्र-दृष्टि अँधेरे में दीवार पर लटकते एक वड़े चित्रपट पर पड़ी। चेहरा जो न होता तो इसे भारतीय ही कह डालते। अधिक

सम्भव है, नेपाल का बना हो। जो भी हो चेहरे की गोलाई को छोड़ यह चित्रपट सभी बातों में भारतीय है। वही त्रिभङ्गी परिचारक मूर्ति; अजन्ता की भाँति ही रेखाओं की कोमलता और रंगों का संयम के साथ उपयोग। थोड़े से इनाम के प्रलोभन से वह भी बाहर लाया गया। फोटो उस वक्त उतारा, जिस वक्त हल्की हवा चल रही थी।

फिर हम मैत्रेय देवालय में गये। यह यहाँ के सबके पुराने देवालयों में हैं। मैत्रये की पीतल की मूर्ति सुन्दर है। भारतीय कही जाती है, जिसपर विश्वास करने का दिल चाहता है। वैसे तो इस देवालय की बहुत सी मूर्तियाँ बतलाई जाती हैं। किन्तु चेहरे की अत्यधिक गोलाकार आकृति, फैली पेशानी, अपेक्षाकृत बड़ा मुखमण्डल वैसा मानने में बाधक है। दो चार की स्फटिक के टुकड़ों को जोड़ कर बनी छड़ी, तथा दूसरी भी छड़ियाँ दिखाई गईं। कुछ और आचार्यों के कपड़े दिखाये गये। चार, पाँच चित्रपट भी थे, जो निश्चय ही छापेखाने के ऊपर वाले एक तथा छापाखाने के भीतरवाले एक दर्जन भारतीय ढंग के चित्रपटों से कहीं पीछे के और कलामें भी निकम्मे हैं। एक फूलधातु का बड़ा सा कटोरा लाया गया। बतलाया गया यह १६ पुराण स्थविरों में से एक का है। उस पर लकड़ी फेर कर बजाया जाने लगा। साँडा का तेल बेंचने वाले अकसर इस तरह के छोटे कटोरों को बजा कर भारत में

तमाशा दिखलाया करते हैं। आखिर झूठ को हजम करने की सबसे बड़ी ताकत धर्मों में ही है न ! एक संगमर्मर की छोटी सी मूर्ति आई। यह तो जरूर भारतीय कला है; यद्यपि बहुत अच्छी नहीं। कहा गया—पहिले यहाँ १६ पुराण स्थविरों के जूते भी थे, किन्तु, उन्हें अब ट-शी-ल्हुन-पो में ले गये हैं। ले जाते वक्त जूते आसमान में उड़े थे। क्यों न उड़े, जब कि वह उड़नेवाले अर्हतों के जूते हैं ?

इन सब सच्ची-झूठी चीजों को देखकर पुराने संघागार में उतरे। आजकल यह इस्तेमाल नहीं होता। इमारत जर्जरीभूत है। कुछ पत्रे यहाँ भी पुरानी भोट-पोथियों के पड़े हैं। सामने के तिनदुवारे मन्दिर में पीतल की बुद्ध मूर्तियाँ हैं; जिनमें एक के दाहिने हाथ में हर्र है, अर्थात् वह बुद्ध भैषज्यगुरु हैं।

अन्त में हम छापेखाने में आये। कुछ लोग तन्-जुर कन्-जुर को ब्लाक पर स्याही लगा लगा कर छाप रहे थे। थोड़ी प्रतिक्षा के बाद पुजारी का चेला चाभी लेकर आया। भीतर गये। मुकुटधारी बुद्ध मूर्ति ( जो-वो ) और दूसरी भी कुछ मूर्तियाँ बाईं ओर देखा। वृहदाकार के कुछ चित्रपट भीत पर टँगे हैं। बिल्कुल अजन्ता की चित्रकला। एक चित्रपट नीचे गिरा था। खोलकर देखा, बहुत सुन्दर भारतीय, चित्रकला का नमूना एक चित्रपट। परिक्रमामें बहुत से पुराने समय के लिखे ग्रन्थ रक्खे हैं। बतलाया गया। अपूर्ण पोथियों ही यहाँ पड़ी

हैं, पूर्ण तो ट-शी-ल्हुन्-यो लेजाई चुकी है। परिक्रमा से होकर जब मूर्तियों की बाईं ओर आये, तो फिर मूर्तियों की पीठ वाली दीवार पर वही चित्रपट। प्रायः दुर्जन यह चित्रपट उदेक्षितावस्था में पड़े हैं। क्या करें, घोड़ों के बंधन में थे, नहीं तो दो तीन दिन ठहरते, और धर्मवर्धन को नकल करने को कहते। डेरे पर लौटे तो दस से ऊपर बज रहे थे। आशा दिलाई गई, सामान लादने के लिये गदहा मिला। थोड़ी देर प्रतीक्षा की। फिर बातों ने अविश्वास पैदा कर दिया। आखिर धर्मवर्धन को फिर पैदल चलने के लिये तय्यार होना पड़ा और हम ग्यारह बजे रवाना हुये।

सामने की उपत्यका को हमें पार करना पड़ा। फिर एक धार के सहारे हमें दक्खिन फिर पूरब को चलना पड़ा। १॥ बजे ङोर् का विहार दिखलाई पड़ा। दूर से देखने पर भोटदेश के मकान अलका के प्रासाद से जान पड़ते हैं। दो बजे पतली धार को छोड़ हम ऊपर चढ़ने लगे। ढाई बजे मठ के भीतर पहुँचे। मठ में एक ही जान पहिचान के लामा थे, जिन्हें १९२६ ई० में हमने लदाख में देखा था, किन्तु वह आज कल खम् प्रदेश में गये हुये हैं। ल-ब्रङ् का रास्ता दिखलाया गया। मांग-यांच करने के बाद ग्य-गर्-लामा को एक ऐसी कोठरी दी गई, जिसमें आने के लिये एक छोड़ तीन तीन रास्ते रख छोड़े गये हैं। पता लगाने पर मालूम हुआ, पहिले तो यहां अधिक तालपत्र

कीं पुस्तकें थीं, किन्तु अब बीस के करीब रह गई हैं। दो पत्रे ताल के आये, अक्षर पुराने मैथिल ( Proto-Bengali ) और ग्रन्थ न्याय का है। इन पत्रों के भी दाहिनी ओर का भाग कटा है। इसलिये ग्रन्थ का नाम नहीं मालूम हो रहा है। एक पत्रे में लिखा है:—

"प्रामाण्यञ्च तस्य कुत इति चेत्। आप्तोक्तत्वादिति। तदसिद्धमिति चेत्। न। विश्वस्य कर्तुरनुमानसिद्धत्त्वात्। विवादाध्यासितकर्तृकं सकर्तृकं कार्यत्त्वात्। विशेषविरुद्धोयं हेतुरिति चेत्। न। विरोधि..."

सुख-दुःख मान-अपमान की पर्वा नहीं, यदि कुछ काम की पुस्तकें प्राप्त हों, देखें आगे क्या होता है।

ङोर्
७-१०-३४

पहिली तारीख को ही हम यहाँ पहुंच गये थे, यह लिख चुका हूँ। कल आठवें दिन यहाँ से प्रस्थान करना है, इसलिये इस सप्ताह भर की बातें सुन लीजिये। पहिले जिस घर में स्थान मिला था, उसकी तारीफ कर चुका हूँ। वहाँ रहना हमें एकदम पसन्द न था, क्योंकि वहाँ एक आदमी के बराबर रहने की जरूरत थी। २ तारीख को हम कु-डे-पा-रिन्-पो-छे और कु-छुङ्-रिन्-पो-छे से मिलने गये। यह दोनों महानुभाव यहाँ के तीन खन्-पो

( Dean ) में से हैं। कु-छुङ्-रिन्-पो-छे तंत्र-शास्त्र के विशेषज्ञ और सिद्ध समझे जाते हैं मिले। और प्रेम से उन्होंने अपने पास की एक तालपत्र की पोथी दिखलाई, जिसमें तीन छोटी छोटी पुस्तकें हैं। उन्होंने यह भी कहा—यहाँ की तालपत्र की पुस्तकें जरूर देखने को मिलेंगी। फिर यहाँ के सबसे बड़े खन्-पो कु-डे-पा-रिन्-पो-छे के पास गये। मालूम होता है, सारे भोट की मुस्कराहट इन्हीं के पास चली आई है। चाय आई। हमने ल्हासा में लिये फोटो को दिखलाया। सन्तुष्ट हुये और पुस्तकों के देखने की अनुमति दी। लौट कर जब अपनी उस पुरानी कोठरी में आये, तो फिर वही चिन्ता। लब्-रङ् ( यही इस परिवेण का नाम है ) के दीवान या छन्-जो से जब दूसरे मकान के लिये कहा तो साफ इन्कार मिला। ईंधन-पानी की भी बड़ी किल्लत। संयोग से कल ही ता-ना के लामा ङग्-की-वङ्-छुग् (वागीश्वर) मिल गये थे, उनसे पता लगा उनके विहार थुब्-तन्-नम्-ग्यल् में भी दो तालपत्र की पुस्तके हैं*। यह स्थान शि-ग-र्ची से पूर्व उत्तर ब्रह्मपुत्र पार दो दिन के रास्ते पर है। वागीश्वर ने चलने के लिये कहा भी, किन्तु सवारी आदि की कठिनाइयाँ और समय का अभाव ऐसी चीज है कि जाने का ख्याल ही क्यों हो सकता है। हाँ, उनसे कहा, आप हमें अपने कमरे में जगह

*यह खंडित पोथियां विशेष महत्व की नहीं हैं।

दें। वह तैय्यार हो गये, और अँधेरा हो जाने पर हम इस नये मकान में चले आये। एक ही घर है, कुछ बड़ा भी है, किन्तु चूल्हे का इन्तजाम भी इसी में है। ईंधन की यहाँ भी ऐसी दिक्कत है, कि सिर्फ एक वक्त कुछ पका लिया जाता है। खैर, एक बात का आराम है, कि हम दोनों ताला बन्द कर काम के लिये जा सकते हैं।

३ तारीख को सवेरे ही से पुस्तकों के देखने की चिन्ता सिर पर सवार हुई। फिर लब्-रङ्-जोद् के खन्-पो और छन्-जे के पास गये। जोर छन्-जे का ही है। उसने दिखलाने को कहा, और बतलाया तीनों खन्-पो और हमारे लदाख के परिचित शब-डुङ्-रिन्-पो-छे के चार आदमियों की उपस्थिति में ग्रन्थागार का दर्वाजा खुलेगा। हम तो निराश लौटे। २ घंटे बाद धर्मबर्धन भी लौटे और बतलाया अभी पूजा पाठ जारी है। हमारे मन में तरह तरह की कल्पनायें उठ रही थीं, क्या जोर की पुस्तकों को बिना देखे ही हमें जाना पड़ेगा। जाना भी कैसे होगा, सवारी और सामान ढोने का तो कोई इन्तिजाम ही नहीं, और यह लोग इस बारे में कुछ करेंगे इसकी आशा नहीं। इतने में दो बजे गये। धर्मवर्धन को फिर भेज दिया था, इसी वक्त लड़का आया, और बोला— पुस्तक-घर खोल दिया गया है, चलिये। गये, लब्रङ् के तीसरे तल्ले पर एक अकिंचन सी अँधेरी कोठरी के भीतर ले जाया

गया। यहां दिन में भी चिराग जलाये विना अपना हाथ मुश्किल से दिखाई पड़ता था। विजली बत्ती हमारे पास भी थी। कोठरी दस हाथ लम्बी, आठ हाथ चौड़ी होगी। पूर्व ओर दरवाजे वाली भीत के पास लकड़ी के ढाँचे की पुस्तक-रखनियाँ थीं। उत्तर की भीत के सहारे कुछ मूर्तियाँ थीं, और पश्चिम की भीत के पास और वहुत सी मूर्तियाँ थीं, जिनमें कुछ तो निश्चय ही भारत की वनी पुरानी मूर्तियाँ हैं। पहिले हमने पूर्ववाली किताबों की आलमारी पर ही नजर दौड़ाई। देखा तिव्वती और भारतीय पुस्तकें मिला जुला कर रखी हैं। तिव्वती पुस्तकें भी हस्त लिखित और पुरानी हैं। कोई कोई तो बिल्कुल तालपत्र की सी मालूम होती हैं। अन्त में पुस्तकों को निकालना शुरू किया। एक, दो, तीन...३८। चित्त खुशी के मारे नाचने लगा। रक्षकों ने कहा—पुस्तकें इस लब्रङ् से बाहर नहीं जा सकतीं। हमने कहा—यहीं सही। छेन्-ज़े के मकान में पुस्तकों का देखना ठीक हुआ। उस दिन और चार तारीख के सारे दिन पुस्तकें देखते रहे। छोटी सी सूची भी बनाई। यह उसी दिन मालूम हो गया, कि इन पुस्तकों में धर्मकीर्ति का वाद-न्याय भी है, जिसकी टीका ल्हासा में मिली थी। फोटो तो लेना ही है। किन्तु उसे जब तक धो कर यहीं देख नहीं लिया जाये, उस पर विश्वास कौन करै। साथ ही वहाँ तो लिखने

का अवसर नहीं था। बहुत कहने पर वादन्याय को डेरे पर लाकर लिखने की अनुमति मिली। तीन चार तारीखों को रात में लिखा। ५ को दिन में भी थोड़ा समय मिला। कल आधी रात को पुस्तक लिखकर समाप्त हुई। पुस्तक में तालपत्र के २० पत्ते या ३८ पृष्ठ हैं। आकार १८×३½ अंगुल है। प्रत्येक पृष्ठ में ९ से ११ पक्तियां हैं। औसत १० पंक्ति रख ली जा सकती है। और प्रत्येक पंक्ति में ७० के करीब अत्तर हैं। इस प्रकार सारी पुस्तक में २६६०० अक्षर होंगे। बहुत आशा थी, शायद यहाँ प्रमाणवार्तिक मिल जाये, किन्तु वह नहीं मिल सका। विशेष महत्व की पुस्तकें यह हैं—

१—वादन्याय

२—वादरहस्य

३—अभिधर्मको शमूल ( अपूर्ण )

४—सुभाषितरत्नकोश ( भीमार्जुनसोम )

५—अमरकोश कामधेनुटीका

६—न्यायविन्दु अनुटीका ( धर्मोत्तर की टीका पर दुर्व्वेक मिश्र-कृत )।

७—हेतुविन्दु अनुटीका ( धर्माकरदत्त की टीका पर दुर्वेक मिश्र कृत)

८—प्रातिमोक्षसूत्र ( लोकोत्तरवादी )

९—मध्यान्तविभंग-भाष्य

१०—अभिधर्मसमुच्चय भाष्य।

चार तारीख को पुस्तकों का देखना समाप्त हो गया। और समय लगाते किन्तु, देखा रक्षक लोग उकता रहे हैं, इसलिये जल्दी करनी पड़ी। पांच तारीख को सारे वादन्याय और तथा अन्य पुस्तकों के कुछ पत्रों तथा चित्रों के फोटो लिये। ताल के कुछ पत्तों और पट्टियों पर सुन्दर चित्र हैं। मुझे आशा नहीं है कि फोटो ठीक उतरेगा। केमरे की भाथी में एक छेद हो गया है, जिससे काफ़ी रोशनी भीतर आती है। इसको पहिले मैंने ख़्याल नहीं किया था।

प्रधान विहार इसी लब्रङ् में है। छः देवालयों के तो हमने दर्शन किये। एक छोटे से में कितनी ही पीतल की मूर्तियाँ हैं। इनमें कुछ भारतीय हैं। एक दूसरे में भोट के प्रसिद्ध विद्वान् वैयाकरण सि-तु-पण्-छेन के बनाये कुछ चित्रपट हैं। मनुष्य चित्र में बुद्ध का जीवन अंकित किया गया है। मनुष्य-आकृति तो उतनी अच्छी नहीं है, किन्तु चीनी ढङ्ग से बने प्राकृतिक दृश्य सुन्दर हैं। यद्यपि यह विहार पन्द्रहवीं सदी में लामा कुन्-ग-जङ्-पो (आनन्दगर्भ) द्वारा बनाया गया था। किन्तु आनन्दगर्भ अच्छा विद्वान था। इसलिये यहां इतनी चीजें संगृहीत हो गईं। पहिले से परिचय न होने तथा समय की कमी के कारण मैं अधिक देखभाल न कर सका। हो सकता है, अभी कुछ और संस्कृत पुस्तकें मिलें।

सम्-दोङ्
७-१०-३४

ङोर् में प्रमाणवार्तिक नहीं मिल सका, जिसके मिलने से अपार अनन्द होता, तो भी वहाँ काफी पुस्तकें हैं; और जरा और अच्छी तरहसे देखने की अनुमति होती तो और भी काम होता। यद्यपि भोटदेश के पुराने परिचय पर उतना विश्वास नहीं किया जा सकता, तो भी जो परिचय हुआ है, उससे दुबारा आनेपर जरूर आसानी होगी।

परसों काम हो जाने पर चलने की फिक्र हुई। और कु-ङिन्-रिन्-पो-छे ने अपने दो खच्चर और एक घोड़े का शब् तक के लिये बचन दिया और यह भी कहा—वहाँ हमारा परिचित आदमी है, आपको अवश्य वहाँ से स-क्य के लिये घोड़े मिल जायेंगे। कु-छुङ्-रिन्-पो-छे-ने स-क्यके गृहस्थ महन्तराज को चिट्ठी लिख दी, और उनके प्राइवेट सेक्रटरी ( दु-नी-छेन्-पो ) को लब्रङ् के खन्-पो ने भी एक चिट्ठी लिख दी। कुछ चाय, मक्खन, और पुस्तकें विदाई में मिली।

कल साढ़े सात बजे बड़ी प्रसन्नता पूर्वक हम ङोर् से विदा हुये। १ मील की उतराई को पैदल ही उतर कर घोड़े पर सवार हुये। प्रायः ३ मील चलने पर एक छोटा वेनामका ला आया। फिर दो मील चलने पर शि-ग-र्चे से स-क्य जाने वाला रास्ता आगया। ११ बजे तक हम चलते ही गये। चे गाँव में पहुँच कर

सत्तू, छाछ और मूली का फलाहार हुआ। बारह बजे फिर रवाना अब धार को पार कर बाईं ओर से आनेवाली छोटी धार के सहारे हम ऊपर की ओर और चढ़ने लगे। चढ़ाई तो बहुत सख्त नहीं है, किन्तु है बहुत काफी दूर तक। इधर के कुछ पहाड़ों पर पत्थर भी है। दो चार जगह हमारी पतली धार पत्थरों पर कूद कूद कर भी उतर रही थी। पत्थरों के कारण रास्ता कुछ जगह ऐसा खराब था। आदमी को विश्वास नहीं पड़ेगा—यह वही पुराना रास्ता है, जिससे आचार्य शांतिरक्षित और हमारे दूसरे भारती आचार्य भोटदेश में आये। आखिर दो बजे हम छग्-चा-ला पर पहुंचे। ला के ऊपर किसी श्रद्धालु ने सुन्दर मानी बना दी है। घोड़े से उतर एक फोटो लिये, और पैदल ही उतरने लगे। उतराई भी काफी लम्बी है। डेढ़ घंटा उतरने के बाद सामने चौड़ी उपत्यका दिखाई पड़ी। आजकल जाड़ा आ चुका है, और खेत भी कट चुके हैं या कट रहे हैं। दो महीने के पहिले तो यह भूमि हरीभरी रही होगी। हमारे दहिने के पहाड़पर बहुत सी बकरियाँ चर रही थीं और चरवाहे भेड़ों के हाँकने के लिये समय समय पर गोफन छोड़ रहे थे, जिसकी चटचटाहट् दूर तक सुनाई देती थी। यह शव् का प्रदेश है।

चार बजे के बाद हम दो तीन घरवाले शव् के एक टोले में पहुँचे। आते ही पहिले स्वागत तो यह हुआ, कि हमें रहने के लिये घरसे बाहर कटे खेत में जगह बतलाई गई। हवा

चल रही थी, और अमावास्या की रात थी उस पर सुनसान सा स्थान। घरवाले ने पूछने पर बतलाया—घोड़े हमारे पास बिलकुल नहीं, गदहे शायद मिल जायें। हमें एक फटा सा भोटिया शामियाना दे दिया गया। जन्म भर की मैल लपेटे काली कलूटी गृहिणी जी ने अपने पवित्र हाथों से चाय पका कर भेज दिया, और हम तम्बू में बैठे बैठे उसे पान करने लगे। हमारे साथ आनेवाले ङोर् के खच्चरवाले ने कहा—हमारा परिचित आदमी अभी भेड़ों को लेकर नहीं लौटा। बड़ी आशा के साथ प्रतीक्षा करने लगे। आखिर सूर्यास्त बाद वह भी पहुँच गया। उसने भी वही उत्तर दिया, जो कि उसके घरके दूसरे और आदमियों ने दिया था; बल्कि उसने यह भी कहा—गदहे भी स-क्य तक के लिये दो नहीं मिल सकते। पांच-छ ले जाने पर मिलेंगे सो भी कोशिश करने पर। इसी अनिश्चित अवस्था में सो गये। दिल में बहुत रंज हो रहा था, ङोर् के महात्माओं पर, उन्हें ज़रा भी ख्याल नहीं आया हमारे आनेवाले कष्ट का।

सवेरे सूर्योदय से पूर्व ही से फिर बात शुरू की। अन्त में बहुत कहा सुनी के बाद ४ मील आगे सेङ्-गे-चे गाँव तक के लिये ६ टङ्के (प्रायः ६ आने) पर दो गदहे और एक आदमी मिला। पैदल ही यात्रा शुरू की। सवेरा था। काफी सर्दी पड़ रही थी। सूर्य हमारे पीछे अभी दिखलाई नहीं पड़ते थे, तो भी सामने १०, १२ मील की उपत्यका के उस पार के

पहाड़ों पर धूप की पीली आकृति दिखलाई पड़ रही थी। खेत कितने कट चुके थे, किन्तु सेङ्-गे-चे गांवके लोग अभी खेतों के काटने में लगे हुये थे। हमारे स-क्य वाले साथी का एक परिचित परिवार खेत काट रहा था। पूछने पर मालूम हुआ—एक घोड़ा और दो गदहे तो कुछ दूर तक के लिये मिल जायेंगे; किन्तु कल। ७॥ बजे हम गाँव में पहुँचे। गाँव के उत्तर तरफ़ वह (सिंह) पहाड़ है, जिसके नाम पर गाँव सेङ्-गे-चे कहा जाता है। किसी समय इस पर एक बड़ा मठ था, जिसकी कुछ दीवारें एकाध मकान अब भी दिखलाई पड़ते हैं। नीचे गाँव में दो तीन अच्छी तरह मरम्मत की हुई मानियाँ हैं। जिस समय हम एक मानी के पास पहुँचे, तो वहाँ कितने ही आदमी एक कान में पेंसिल लटकते—अर्थात् अफसर के गिर्द खड़े थे। हमारे साथी ने टोपी उतार उसी से प्रार्थना की। अफसर को दया आ गई, और एक काली कलूटी स्त्री—स्वभाव से नहीं मैल से— को दो गदहा और एक घोड़ा चाङ्-शुम् तक के लिये देने को कह दिया। हम लोगों ने चाय-मक्खन भेज दिया, और बनकर आने पर नाश्ता करने लगे। स्त्री के मालिक ने ६ साङ् किराया माँगा। गर्ज थी, इसलिये हमने मोलभाव नहीं किया।

९ बजे रवाना हुये। यद्यपि धर्मवर्धन को चढ़ने के लिये एक गदहा अलग लिया गया था, किन्तु वह गदहे पर चढ़ना

शायद कब्र-शान समझते थे, अथवा पाप होने से डर रहे थे, कुछ भी हो कहने पर एक जगह थोड़ी ही दूर के लिये चढ़े। दो घंटा घाटी में उत्तर-पूर्व से दक्षिण पश्चिम चलने के बाद हम नदी के किनारे पहुंचे। नदी की धार काफी चौड़ी थी। एक जगह उतरने में असफल हो हम उस जगह गये जहाँ नदी दो धारों में विभक्त हो रही थी। यही नदी का कमजोर स्थान होता है। लड़कपन में भी सुना था—समुद्र ने समझा, भगीरथ के पीछे गंगा बहुत जोर से आ रही है, यदि उसे इसी प्रकार जाने दिया गया, तो वह मेरे ऊपर से उस पार चली जायेगी, और फिर मेरी मर्यादा नहीं रह जायेगी। वह बात कुछ अंश में यहां ठीक मालूम हुई। हम दोनों बड़ी और छोटी धारा को पार कर जिस वक्त आगे बढ़ना चाहते थे, उस वक्त धर्मवर्धन को अपने टोप ( कोट-हैट ) की सुध आई। छत्ता लगाने पर उन्हें टोप के नीचे गर्मी मालूम होने लगी थी, और उन्होंने उसे हमारे घोड़े के जीन से बाँध दिया था। मैं तो पहिले ही यही आशा रखता था। खैर मेरे चढ़ते वक्त तो वह नहीं गिरी। जब धर्मवर्धन को लाने के लिये घोड़ा फिर उस पार गया, तो वह किनारे पर गिर गई। आखिर घोड़ेवाला टोपी की खोज में गया। दूर से हमने उसे जमीन पर झुकते देखा और विश्वास हो गया टोपी मिल गई। किन्तु लौट कर आने पर उसने कहा—टोपी नहीं मिली, जाओ घोड़े पर देख आओ। हमें तो विश्वास

था, टोपी उसके पास है। कुछ और चलने पर मैंने धर्मवर्धन से कहा—देखो दाहिनी कोख में चोगे के नीचे टोपी है। उन्होंने हिम्मत कर उसे टटोला; फिर आदमी ने टोपी दे दी।

हमारे सामने इस समय चे-सुम् (शिखर त्रय) का विहार पहाड़ पर दिखाई पड़ रहा था। इस पहाड़ के पास नदी धनुषाकार हो गई है। रास्ता बायें तट से है। १२ बजे हम सम्-दोङ् गाँव (विहार के पश्चिम नदी पार) में पहुँचे। ४-५ घर हैं, जो नदी के तट पर ही बसे हुये हैं। घोड़े वाले को अभी १॥ मील और आगे चलना था, किन्तु, उसने कहा—यहाँ हमारे परिचित का घर है, यहाँ से स-क्य के लिये घोड़ा मिल सकता है, अगले गाँव में मिलना आसान नहीं। बातचीत करने पर स-क्य के लिये दो घोड़े और एक गदहे का दस साङ् ठीक हुआ, साथ जानेवाले आदमी के लिये ८ शो-गङ् (४/५ साङ्) अलग। इस प्रकार यहीं विश्राम करना पड़ा। रहने के लिये घर के भीतर कोठे पर जगह मिली; जिसकी कड़ियों से धुयें के लच्छे लटक रहे हैं। खैर, स्थान सुरक्षित है, यही सन्तोष है। परसों स-क्य पहुँच जाना है।

स-क्य

१२-१०-३४

१० अक्टूबर को सम्-दोङ् से ७ बजकर बीस मिनट पर रवाना हुये। हमारे लिये दो घोड़े थे, और सामान गदहे पर। हम

दक्षिण की ओर जा रहे थे। रास्ता खेतों में से था। फसल के कट जाने से उनमें चलने में बाधा सिर्फ ऊँचाई निचाई की थी। प्राय: मील भर चले होंगे कि हमारी दाहिनी ओर जरा सा पहाड़ पर एक पुराने विहार का ध्वंसावशेष दिखाई पड़ा। विहारकी तो दिवारें ही खड़ी हैं, किन्तु तीन स्तूप पत्थर की अच्छी चिनाई होने के कारण अपने ढाँचे सहित विद्यमान हैं। इधर रास्ते पर मील के पत्थर लगे हुये हैं, किन्तु, अङ्क बहुत कम में ही पाये जातेहैं। इसी-लिये हम पत्थर की ओर अधिक ध्यान नहीं देते रहे। एक और बात है, और देशों में मील का अङ्क राजधानी या किसी प्रधान शहर से शुरू होता है, किन्तु यहाँ इस विषय में ल्हासा की कोई कद्र नहीं। प्राय: दो घंटा चलने के बाद हमारा रास्ता पश्चिम की ओर मुड़ा। शाम तक का बाकी रास्ता पश्चिम की ओर को ही रहा। इस त्रिवेणी से थोड़ा दक्खिन और जाते, तो ल्हासा के भूतपूर्व मंत्री छा-रोङ् का महल मिलता। हमारा रास्ता उधर से तो था नहीं, इसलिये हम महल को नहीं देख सके। हाँ, इस धार के साथ प्राय: एक मील चलने पर दाहिनी ओर के पहाड़ में एक छोटाकिन्तु अच्छी अवस्था में विहार मिला। यह विहार छा-रोङ् मंत्री के पहिले पुरुषों का बनवाया है। इससे तथा रास्ता से नीचे छा-रोङ् का एक मकान है। तिब्बत के सभी खेत जागीरों में बँटे हुये हैं। हर एक जागीरदार अपनी अपनी जागीर में एक अच्छा मकान रखता है। यहाँ भी छा-रोङ् मन्त्री का एक ऐसा ही मकान है।

रास्ते में हमें और धारों के संगम मिले, किन्तु हमारा रास्ता अन्तिम धार को छोड़ बाईं धार से ही था। इधर के पहाड़ों पर एक छोटी पत्तियों का हाथ हाथ भर का पौधा है, जिसकी पत्तियाँ इस समय लाल हो गई हैं। गाँव वाले इसे काट काट कर ले जा रहे हैं। जाड़े में जानवरों के खाने की फिक्र करनी ही जो ठहरी।

बारह बजे के करीब हम सुम्-दो गाँव में पहुँचे। जहाँ दो धारों का समागम होता है, उसे ही सुम्-दो कहा जाता है। इसके पास पुराने गाँव का खँड़हर है। पहिले के लोग पत्थर की चिनाई अच्छी जानते थे, इसीलिये शताब्दियों से परित्यक्त इन मकानों की दीवारें अभी भी खड़ी हैं। पूछने पर साथी ने बतलाया— यहाँ के लोग अधिक पापी हो गये थे, इसीलिये गाँव उजड़ गया। हम लोगों ने ठहर कर इसी गाँव में दोपहर का भोजन किया। घंटे भर बाद फिर रवाना हुये। आगे एक दो गाँव और मिले। वृक्षों की कृशता बतला रही थी कि हम काफी ऊपर जा रहे हैं! डेढ घंटा चलने के बाद हम एक तिरमुहानी पर पहुँचे। यहाँ से हमें दाहिनी धार पकड़नीं थी। बाईं धार की दाहिनी ओर एक छोटी सी किलाबंदी है, जिसमें किसी समय सिपाही रहा करते होंगे। इस समय तो उसकी दीवारें कितनी ही जगह गिर गई हैं। दोनों धारों के बीच में भी एक ऊँचा पुराना मकान है, जिसे भिक्षुणियों ने अपने मठ के रूप में

परिणत कर दिया है। भारत से नेपाल होकर आने वाले रास्ते पर इस प्रकार की किलाबंदी होनी ही चाहिए। इसी जगह हमने आखिरी वृक्ष देखे।

यद्यपि हम बहुत ऊपर चल रहे थे, किन्तु चढ़ाई उतनी कठिन न थी, घंटा भर चलने पर हमें उपत्यका अधिक चौड़ी मिली। पास के पहाड़ों पर भी छोटी छोटी घास सर्वत्र थी, जो आजकल पीली पड़ गई है। रास्ते में एक दो मानियाँ मिलीं। धार के पार चार पाँच डोग्-पा (भेड़ चरानेवालों) के गाँव दिखाई पड़े। जिनके पास कितने ही खेत थे। इस पंद्रह हजार फीट की ऊँचाई पर भी खेत! चार बजे हम जिग्-ग्यव् नामवाले डोक्-पा गाँव में पहुंचे। गाँव में तीन चार घर हैं। एक छोटा गुम्-वा (मन्दिर) भी है। एक छोटी कोठरी रहने को मिली। लकड़ी के अभाव से मकान की छत और कड़ियाँ सभी पत्थर की थीं। हमने गाँव का एक फोटो लिया। कंडे की आग जलाई गई, जिससे सारी कोठरी धुयें से भर गई। परेशानी तो थी, किन्तु धुआँ कोठरी को गर्म भी कर रहा था। कल रात को पिस्सुओं ने सोने नहीं दिया था, आज पेट भर सोये।

११ अक्टूबर को ५-२० बजे चले। शो-ङ-ला की जोत् प्रायः १॥ मील पर है। नक्शे में माप नहीं देखा, किन्तु जोत् सोलह हजार फीट से कम ऊँची न होगी। सबेरे वैसे ही काफी सर्दी पड़ रही थी, ऊपर से सामने की हवा चल रही थी। हमने आँखों को

खुला रख सारे बदन को ढाँक लिया था। चढ़ाई क्रमशः है। जोत् पर पहुंच कर कायदे के मुताबिक घोड़े से उतर पड़े। नीचे की धार तक आधे मील की उतराई कुछ कड़ी है। हम सर्दी में कदम आगे बढ़ाते जा रहे थे, और मुँह अच्छी तरह खुला न रखने के कारण देख न सके, कि रास्ता धार के पार जा रहा है। कुछ आगे बढ़ने पर साथियों ने आवाज दी, तब ख्याल आया। वहाँ धार दो तीन भागों में विभक्त थी, एक दो को तो बिना जूता भिगाये ही पार हो गये। तीसरी बड़ी थी। घोड़ा भेजा गया। उसने भी हमारी बेबसी को देख लिया था, इसीलिये सिर्फ न चढ़ने ही नहीं दिया, बल्कि पास से गुजरने पर जोर से लात मारी। खैरियत यही हुई कि हम जरा बगल में होगये थे, और एक चोट बहुत हल्की सी एक पैर पर लगी। कितने मील तक हम उतरते रहे, यह तो नहीं कह सकते। हाँ, दस बजे हम धार के पार वाले एक डोक्-पा गांवमें पहुँचे। यहाँ भोजन और मध्यान्ह विश्राम हुआ। साढ़े बारह बजे फिर प्रस्थान।

फिर नदी पारहो आध मील नीचे की ओर चले, फिरबांये तिरछे काटकर दूसरे नाले को पार हुये। अब हम अ-टू-ला की ओर चढ़ रहे थे। ढालुआं चढ़ाई पर हम नाक की सीध चल रहे थे। चढ़ाई मील भर से अधिक न होगी। इसे ला न कहकर लाई कहना चाहिये। उतराई मील भर की और खड़ी थी। नीचे पहुंच नदी पार हुये, और फिर स-क्य का बिहार मील भर पर दिखाई

पड़ा। पुराना बिहार या ल्ह-खङ्-छेन्-मो नदी के उसी ओर है, जिधर से हम चल रहे थे। यह खेतों के बीच समतलसी भूमि में है। दूसरा विहार नदी पार पहाड़ पर सीढ़ियों जैसा बना है। इसी के नीचे नदी तट तक स-क्य कस्बा है। पार होने के लिये नदी पर तीन पुल हैं। हम लोगों को स-क्य महन्तराज ( दग्-छेन्-रिन्-पो-छे ) के प्राइवेट सेक्रेटरी ( दु-नी-छेन्-पो ) के पास पहिले जाना था। बिचले पुल से पार हो हम उक्त सज्जन के घर पर पहुंचे। ङोर से लाई चिट्ठी अन्दर भेजी, और तुरन्त ऊपर बुलाया गया। दु-नी-छेन्-पो वस्तुतः ही बहुत सज्जन हैं। अवस्था ६० के करीब होगी। भोट भाषा का अच्छा ज्ञान रखते हैं। विद्या से प्रेम है। तिङ्-रीक एक गुमनाम वृद्ध भिक्षु के व्याकरण ग्रन्थ से इतने प्रभावित हुये, कि उसका ब्लाक बनवा रहे हैं। महन्तराज के दो पुत्रों की भांति इनको भी कोई सन्तान नहीं है। शाम तक चाय-पान और वार्तालाप चलता रहा। कन्-जुर पुस्तकालय में आसन लगा। घर भर का वर्ताव बहुत सुन्दर रहा।

दग्-छेन्-रिन्-पो-छे या स-क्य के महंत, चंगेज की सन्तान के गुरु स-पण्-कुन्-गा-ग्यल्-छन् ( ११८२-१२५१ ई० ) और फग्-पा-लो-डो-ग्यल्-छन् ( १२३४-८० ई० ) के उत्तराधिकारी हैं। इनके पूर्वजों को भोट का राज्य मिला था। तिब्बत में महन्तशाही का आरम्भ तभी से हुआ था। राजा होते समय मंत्री ( श-बे ) प्राइवेट सेक्रेटरी ( दु-नी-छेन्-पो ) आदि का जो पद और मर्यादा

थी; आज राज्य के न होने पर भी उसे उसी तरह कायम रक्खा गया है। स-क्य महन्तराज का स्थान दलाई लामा और पण्-छेन् (टशी) लामा के बराबर समझा जाता है। धार्मिक बातों में यह है भी वैसा ही। हमें अपनी आवश्यकताओं को अर्जी के रूप में लिखना पड़ा। और पहले ही से डोर की परिचय वाली चिट्ठी के साथ भेज दिया। महंत जी गर्मियों में डोल्-मा-फोब्रङ् में रहते हैं, जो हमारे निवासस्थान से दक्षिण और ल्ह-खङ्-छेन्-मो (महादेवालय) से भी थोड़ा दक्षिण है। दस बजे एक अफसर के साथ हम चले। पुल पार कर पहिले महादेवालय में गये। देवालय बीच में आंगन रखकर बनाया गया है। ढंग बिलकुल तग्-लुङ्-मठ जैसा है। दीवारें बहुत ऊँची हैं। देवालय के बाहर भिक्षुओं के रहने के स्थान हैं। और फिर सबके बाहर आठ चौकोर घरों के बुर्जों वाला ऊंचा प्रासाद है, जो किसी समय सैनिक ख्याल से बनाया गया था। हम महादेवालय में घुसे। भिक्षु लड़कों ने हमारे पीले कपड़े को देख हँसी के ठहाके के साथ स्वागत किया। आँगन काफी विस्तृत है। पश्चिम ओर प्रधान मन्दिर है। एक छोटे द्वार से भीतर गये। बुद्ध और बोधिसत्व की कितनी ही पीतल की सुन्दर मूर्तियाँ हैं। उनके सामने चीन से प्राप्त कितनी ही भेटें सजाई गई हैं। बायीं ओर से एक छोटे द्वार में घुस हम प्रदक्षिणा में गये। प्रदक्षिणा काफी लम्बी है।

स-क्य—नृत्य

स-क्य—मठ (पृष्ठ ६६)
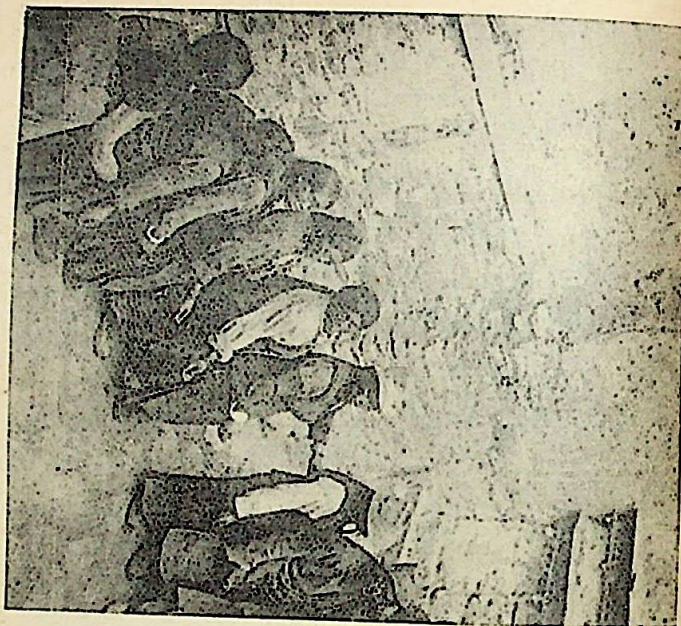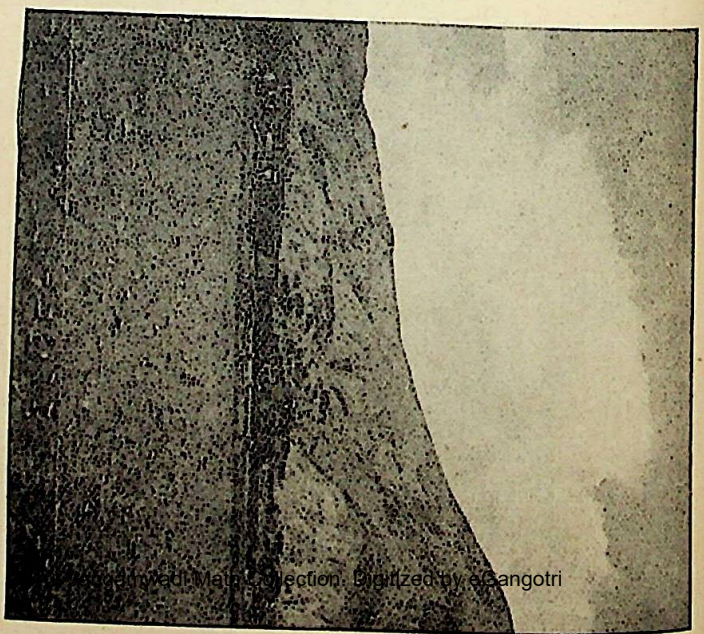
इसमें हस्तलिखित भोट पुस्तकें इंटों को छल्लो की भाँति चिनी गई हैं। कोई कोई पोथियाँ बहुत लम्बी चौड़ो हैं । एक शतसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता तो असाधारण आकार की है । यह सभी पुस्तकें चिरकाल से पाठ के लिये न होकर पूजा की चीज बन गई हैं। परिक्रमा में ही प्रायः एक फुट व्यास का एक लम्बा खम्भा दिखलाकर हमसे कहा गया—सिद्धि के बल से यह तिनके का खम्भा बनाया गया। हमने धर्मवर्धन से कहा—आजकल यन्त्र के बल से कमजोर तिनकों के इससे भी मजबूत और चिकने खम्भे बनाये जाते हैं। सामने की ओर देवदार के बहुत से विशाल स्तम्भ हैं, जिनमें कितनों ही को दो आदमी भी बाँह से लपेट नहीं सकते। ऊँचे भी ३०-३० हाथ के होंगे। इनके बारे में बतलाया गया—फग्-पा धर्मराज के शिष्य चीन सम्राट ने उन्हें चीन से भेजा था । धर्मवर्धन ने पूछा—इतनी दूर से कैसे यहाँ तक पहुँचे ? हमने छुर-फू के सिद्ध कर्-मा-ब-ख्-शी ( १११०-९३ ई० ) की ओर इशारा करते कहा—इसमें कौनसी मुश्किल हैं । जैसे कर्-मा-व-ख्-शी ने चीन में प्राप्त भेटों को वहीं एक नदी में फेंक दिया था, और वह छुर्-फू आ पहुँचीं, इसी प्रकार संघराज फग्-पा के यह खम्भे भी आ गये होंगे ।

नीचे का दर्शन समाप्त कर हम छत पर गये। देवालय के द्वार के बाहर से सीढ़ो है। बहुत ऊँची और सीधी

होने से उतरते वक्त बहुत डर लगता है। ऊपर छत चौड़ी है। उत्तर की ओर एक देवालय में गये, इसमें चंड देवताओं की कितनी ही मूर्तियाँ हैं। हमें जो मूर्ति सब से अधिक आकर्षक मिली, वह है वैशाली के कायस्थ पंडित गयाधर की भारतीय आकृति की मूर्ति। पंडित गयाधर ने डोग्-मी-लो-चोव के पास कुछ दिनों रह कितने ही संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद किया था। ल्ह-र्चे (ब्रह्मपुत्र तट) में वह स्थान अब भी बतलाया जाता है जहाँ पर पंडित गयाधर रहे थे। मूर्ति मनुष्य के बराबर की है। चेहरा बिल्कुल भारतीय। धर्मबर्धन को कहा—इसकी नकल कागज पर उतारो। रंग तो नहीं उतारा जा सका। इस छोटी अँधेरी कोठरी में फोटो की तो बात ही नहीं की जा सकती।

महादेवालय के प्राकार के बाहर हो तारामहल जाते एक फ़ोटो लिया। तारामहल में मालूम हुआ, अभी महन्त जी से भेंट करने में कुछ देर है, उससे दक्षिण ओर पास में ही व-रि-लो-च-व (महंत ११०२-११११ ई०) के निवासस्थान पर गये। मकान तो वही नहीं है, किन्तु भीतर तारा की मूर्ति सुन्दर और पुरानी है। कहते हैं, इसे व-रीने ही बनवाया था। इस स्थान से दक्षिण प्रायः आधा मील पर एक पहाड़ी मैदान के ऊपर खोन्-कोन्-गर्यल् (१०-३४-११०२ ई०) ने स-क्य विहार की स्थानपना की थी। उस विहार का अब पता नहीं है। पहिले वहां एक

गांव भी था जो अब नहीं है! व-रि-लो-च-व की सेवा स्वयं तारा एक लड़की के रूप में रह कर करती थी। एक दिन वह लड़की उसी गाँव में आग लेने गई। कुत्तों ने उसे खदेड़ा, और वह भागती हुई एक पत्थर पर गिरी। ब-रि के मन्दिर से थोड़ी ही दूर दक्षिण-पश्चिम वह पत्थर दिखलाया जाता है, इस पर लड़की रूपी तारा के घुटनों के निशान हैं। आखिर गया का विष्णुपद भी तो एक ऐसा ही निशान है, यदि वह सचा है तो यह भी क्यों नहीं।

अब हम परिक्रमा करते तारामहल में पहुँचे। भीतर द्वार पर महन्तराज के कुंवर साहेब और उनकी स्त्री दिखलाई पड़े। खोन्-कोन्-ग्यल् की सन्तति ही (व-रि-लो-च-व को छोड़) तब से अब तक स-क्य मठ की मालिक है। बीच में स-पण कुन्-ग-ग्यल्-छन्, फग्-पा, और धर्मपालरक्षित (१२६८-८८) जैसे कुछ भिक्षु गद्दी नशीन हुये थे, बाकी सभी महंत गृहस्थ रहे हैं। वर्तमान महन्त भी गृहस्थ हैं, अवस्था ६३ वर्ष की है। इनके दो लड़के ३२, ३३ वर्ष के हैं। अब तक कोई सन्तान नहीं है, इसलिये लोग बहुत चिन्तित हैं। पुत्र और वधू दोनों के कानों में महन्तवंश-सूचक फीरोजा जटित कर्णभूषण था। थोड़ी देर हमारा साथी उनसे बातचीत करता रहा। फिर हम महन्त जी के स्थान पर गये। कुछ देर तक हमें बाहर प्रतीक्षा करनी पड़ी। फिर हम महन्त जी के सामने पहुँचे।

हमारे साथी और धर्मबर्धन ने साष्टांग दंडवत् की। हम तो अच्छी तरह हैं—पूछ अपनी पुस्तकें भेंट कर अलग बिछे आसन पर बैठ गये। महन्त के बाल कितने ही सफेद हो गये हैं और रंग भी भारत के कितने ही कम काले लोगों जैसा है, जिससे स्पष्ट है, कि इस वंश में किसी समय भोट-भिन्न रक्त मिश्रित हुआ था। आधे घंटे से ऊपर हमारी बातचीत होती रही। जब बात करने के लिये बात ही न रह गई, तो हमने विदा माँगी। महन्तराज ने पुस्तकों के देखने की अनुमति दे दी, किन्तु, साथ ही कहा—हमें पता नहीं ताल पुस्तकें कहाँ हैं।

फिर महादेवालय के खन्-पो ( Dean ) के पास गये। उम्र तीस के करीब होगी-बेचारे अच्छी तरह मिले स-क्य विहार की हस्तलिखित सूची देखकर बतलाया—पे-खङ् ( पुस्तकालय ) में भोट और ग्य-पे ( भारतीय या चीनी पोथी ) तेरह-सौ-चौंतिस हैं। बड़ी प्रसन्नता हुई। सोचा और धर्मवर्धन से भविष्यद्वाणी भी कर दी—इनमें कम से कम सौ पोथी संस्कृत की हैं, और प्रमाणवार्तिक तो जरूर है। लौटकर निवास-स्थान पर आये। पे-खङ् के लिये अभी मन्त्री की आज्ञा भी लेनी थी। मन्त्री बुलाये गये, ४॥ बजे आज्ञा मिल गई। और ख़ुशी ख़ुशी ऊपर चढ़कर हम उस स्थान में पहुंचे।

ताला खोला गया। कई कोठरियों से होते विहार के इष्टदेव के मन्दिर में घुसे। सभी तरह के पुराने अस्त्र शस्त्र ही जमा नहीं किये

गये हैं, बल्कि कितने ही आदमियों के सूखे शिर और हाथ भी लटकाये हुये हैं। कुत्ते जङ्गली याक् बाघ और दूसरे जानवर भी छत से लटक रहे हैं। फिर अन्धेरे रास्ते से उस स्थान पर पहुँचे जहाँ भोट का सब से भारी विद्वान् स-पण् कुन्-ग-ग्यल्-छन् रहा करता था। छोटी कोठरी है। इसीमें स-पण् की मूर्ति है। दीवारों पर बेपर्वाही के साथ लटकाये कितने ही चित्रपट हैं। गौर से देखने पर वह बहुत सुन्दर मालूम हुये। विचार हुआ, कुछ के फोटो लें। फिर फूले न समाते पुस्तकालय के भीतर पहुंचे, सामने की तीन चार पीतल की मूर्तियाँ हाथ के सहारे देखी। एक मूर्ति के आसन पर एक ताल पत्र मिला। कुछ मन्त्र लिखे थे। अच्छा शकुन हुआ। फिर पुस्तकों को देखने लगे। एक ओर की सारी पुस्तकें देख डाली। कोई ताल पोथी नहीं। दिल धड़कने लगा। दूसरी पाँती में भी कोई ताल पोथी नहीं। तीसरी में एक पोथी मिली, जिसे खोलकर देखने पर मालूम हुआ, प्रज्ञपारमिता मन्त्र आदि के कितने ही पत्रे जमा किये हुये हैं। दिल को विश्वास नहीं हुआ। एक बार फिर टार्च लेकर देखा। वहाँ सिर्फ भोट हस्त-लिखित ग्रंथ और कितने ही चीनी बौद्ध ग्रन्थ के रोल हैं। निराशा के बारे में क्या पूछते हो, रोकने पर भी उदासी चेहरे पर आये विना न रही। कहा—एक बार सभी देवालयों की पुस्तकों को देख लेना चाहिये।

लौटते वक्त हम ड-चे-ल्ह-खङ् में गये। इसके भीतर कई मन्दिर हैं, जिनमें नम्-थर-ल्ह-खङ् एक बड़ा मन्दिर है। प्रधान

मूर्ति मंजुघोष बोधिसत्व की है, जिसे स-पण् ने स्थापित किया था। सामने दीवार पर भी मंजुघोष का चित्र है, जिसके बारे में बतलाया जाता है—स-पण् ने मंजुघोष की मूर्ति की ओर मुँह किये ही पीठ की ओर दीवार पर यह प्रतिचित्र बनाया था। मन्दिर में कई और सुन्दर मूर्तियाँ हैं। यहाँ भी पुस्तकों की छल्ली दीवारों के पास चिनी हुई है। तीन पुराने चित्रपट भी देखे। दो एक और देवालयों को देखते निवासस्थान पर लौट आये।

२६-१०-३४

ग्यारह दिन बाद आज फिर इस पत्र को लिखने बैठा हूं। सारा ही समय प्रमाणवार्तिकालंकार लेता रहा। प्रमाणवार्तिक के दूसरे और तीसरे परिच्छेदों का ही यह महाभाष्य उपलब्ध है, और वह भी आदि और अन्त में खंडित। प्रज्ञाकर-गुप्त का समय आठवीं शताब्दी का अरम्भ हो सकता है। वह आचार्य धर्मकीर्ति के प्रप्रशिष्य देवेन्द्र मति के और प्रशिष्य शाक्य मति के शिष्य तथा आचार्य धर्मोत्तर के गुरु थे। संस्कृत भाषा और छन्द-निर्माण पर उनका पूरा अधिकार था। पक्षी के लिये कड़े शब्द का प्रयोग बिल्कुल नहीं करते। भाष्य गद्य और पद्य दोनों में ही है, वैसे ही जैसे पार्थ सारथी की शास्त्रदीपिका। क्या ही अच्छा हुआ होता यदि सारा ग्रन्थ मिलता। इस ग्रन्थ का भोट भाषा में अनुवाद हो चुका है। पहिले परिच्छेद को मैं उतार चुका हूँ। श्लोकों का अन्दाज़ लगाने पर पहिले परिच्छेद में

डेढ़ हजार श्लोक ( अड़तालीस हजार अक्षरों ) से कम न होंगे। इस परिच्छेद का भी आरम्भिक भाग पुस्तक में नहीं है। इच्छा तो उत्कट थी कि सारे ग्रन्थ को लिख डालें, किन्तु सर्दी बहुत बढ़ रही है। स-क्य समुद्रतल से १४७१५ फीट ऊपर है। फिर अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह ही में कड़ी सर्दी पड़ने लगे तो आश्चर्य ही क्या। दोपहर को भी बाहर पानी की नालियों में बर्फ जमा देखता हूं। स्याही तो फौंटेनपेन की होने से नहीं जमती, किन्तु हाथमें ठिठराहट मालूम होती है। रहना होता तो कोई बात नहीं किन्तु अभी बड़ी बड़ी जोतों को पार करते भारत लौटना है। रास्ते में नेपाल में भी दो सप्ताह देने हैं, इसीलिये दूसरे परिच्छेद के नकल करने के लोभ को संवरण करना पड़ता है। भारत में मित्र लोग जरूर कहेंगे,—क्या था डेढ़ सप्ताह और ठहर गये होते। हाँ, मैंने सारे ग्रंथ का फोटो ले लिया है, और न लिखे भाग का तो दो दो। लेकिन मुझे इस फोटो पर विश्वास नहीं। रोलाइ फ्लेक्स केमरा तो नहीं है। हर चौथी बार देखने पर केमरे की भाथी में बारीक छेद से दिखाई पड़ते हैं, और एक्सपोजर का भी अभी अच्छी तरह अन्दाज नहीं मिला है।

अच्छा इतनी बहानेबाजी के बाद कुछ और उल्लेखनीय बातें लिखता हूँ।

१५ तारीख को भी यद्यपि हमने ४० मंदिरों के दर्शन किये थे, किन्तु वह सब जल्दी में हुआ था। १३ को दस बजे फिर

चले। तेरहवीं शताब्दी में स-क्य के विहाराधिपतियों ने तिब्बत पर शासन किया था, और साथ ही साथ वह चीन सम्राट् के धर्मगुरु भी थे। इसलिये स-क्य विहार को विशाल होना ही चाहिये। पीछे के सुधारक चोङ्-ख-प ने स-क्य वालों से बहुत सी बातें ली हैं। पहाड़ की बाहीं या शिखर पर मठों को बनवाना स-क्य वालों ने ही आरम्भ किया था, जिसका अनुकरण पीछे इतना हुआ, कि आजकल थोड़े से पुराने मठों को छोड़ कर बाकी सभी मठ तिब्बत में पहाड़ों पर ही पाये जाते हैं। पीली टोपी वालों के गौन (चोगा) आदि भी स-क्यों की नकल से ही बने हैं। अस्तु।

मठ के सभी देवालयों के दर्शन तो हम कर नहीं सकते थे, पथप्रदर्शक हमें प्रधान देवालयों की ओर ही ले गये। एक दो देवालयों को देखते हम स-छेन्-कुन्-ग-ञिङ्-पो (१०९२-११५८ ई०) के समाधि-गृह में पहुँचे। यद्यपि सक्य मठ का आरंभ उनके पिता ने किया था, किन्तु उसकी आरम्भिक उन्नति इन्हीं के हाथों हुई थी। यह अपने पिता की भांति गृहस्थ ही रहे। इस मंदिर में एक स्तूप के भीतर इनका मृत शरीर रक्खा हुआ है।

रास्ते के दो चार देवालयों को भीतर से और ध्वस्तप्राय मंदिरों और स्तूपों को दूर से देख एक बार फिर हम गु-रिम्-ल्ह-खङ-पहुँचे। स-पया् के निवासस्थान के चित्रपटों में से १२

को फोटो लेने के लिये चुना। फिर महाकाल के मंदिर में आदमियों और पशुओं के शिर और शरीर देखने गये। देखकर हम निकल रहे थे कि एक-ब-एक ख्याल आया, चलो एक बार और पे-खङ् (पुस्तकालय) देख लें। अब की बार और गौर से देखने का विचार हुआ। हमने अभी देखना आरम्भ किया था, कि धर्मवर्धन का हाथ एक कागज पर लिखी पोथी पर पड़ा। आकार २७"×४" और पत्रे ५९ थे। साधारणतया ऐसी कागज पर लिखी पुस्तक को भोट भाषा का ग्रंथ समझ हम छोड़ जाते, किन्तु धर्मवर्धन ने खोलकर देखा—ओः! यह तो भारतीय ग्रंथ है। मैंने देखा तो मालूम हुआ प्रमाणवार्तिक का महाभाष्य वार्तिकालंकार है। ग्रंथ खंडित था, तो भी बड़ी खुशी हुई। इसके लिये क्या किया यह लिख चुका हूँ। मन लगाकर फिर सारी पोथियों की देखभाल की, किन्तु वहाँ कोई दूसरा संस्कृत ग्रंथ न मिला। दु-उ-चे-ल्ह-खङ् में फिर गये। एक विशाल देवदार स्तम्भ पर (जो कि नम्-थर-ल्ह-खङ् के द्वार पर है) जे-चुन्-डग्-प-ग्यल्-छन् (११४७-१२१६ ई०) के समय का एक ताम्रपत्र है। ताम्रपत्र का फोटो तो नहीं ले सके, किन्तु धर्मवर्धन ने उसकी नकल करली। यहां भी २, ४ फोटो लिये और फिर संघराज फग्-पय-लो-डोस-ग्यल्-छन् (१२३४-१-२८० ई०) के समाधिगृह को देखने चले। यह चीन सम्राट् कुब्-ले-हान् के गुरु थे। समाधिगृह पर

चीनी ढंग की सुनहली छत है। भीतर स्तूप में उनका मृतशव या अस्थि है, और चारों तरफ उनको प्राप्त हुई कितनी ही भेटों का संग्रह है। इनमें कितने ही तेरहवीं' शताब्दी के चीनी मिट्टी के सुन्दर वर्तन भी हैं।

अन्त में तीन बजे हम चि-दोंङ् प्रासाद में पहुँचे (शि-तो)। स-क्य के महन्तराज जाड़ों में इसी में रहते हैं। प्रासाद विशाल है। मरम्मत अच्छी तरह से न होने के कारण कहीं कहीं बिगड़ भी रहा है। और गन्दगी ? यह तो तिब्बत में सार्वजनीन चीज हैं। इस प्रासाद में भो कितने ही मंदिर हैं। जिनको देखते हम ग्य-गर्-ल्हखङ् (भारतीय देवालय) में पहुँचे।

दूसरे तल्ली पर एक छोटो सी कोठरी है, जिसे देखकर कोई कह नहीं सकता, कि इसमें इतनी अनमोल भारतीय पीतल की मूर्तियों का संग्रह होगा। एक ही दीवार के सहारे आठ और सात पांतियों में यह मूर्तियां रक्खी हुई हैं। उनकी तफसील इस प्रकार है :—

| (क) | (ख) |
|---|---|
| १—भोट | १—भारत-भोट |
| २—भोट-भारत | २ - भारत (छोटी) |
| ३—भारत-भोट | ३—भोट-भारत |
| ४—भारत × | ४—भोट-भारत |
| ५—भारत | ५—भोट |
| ६—भारत | ६ —भोट |
| ७—भारत | ७—भारत |
| | ८—भारत |

बीच बीच में कहीं कहीं तिब्बत (=भोट) की बनी मूर्तियां हैं, जिन्हें पहिचान न होने के कारण लोगों ने यहां रख दिया है। जिस पंक्ति में दोनों प्रकार की मूर्तियां हैं वहाँ अधिक मूर्ति वाले देश का नाम मैंने पहले लिख दिया है। भारतीय मूर्तियों की संख्या सौ से अधिक है और जो तीन चार इंच से एक फुट की हैं। इनमें कुछ मूर्तियां तो गुप्तकालीन हो सकती हैं। मूर्तियों को रस्सी से बाँध रक्खा गया है, इसीलिये चारों ओर अच्छी तरह देखा नहीं जा सकता। तो भी देखने पर तीन में अक्षर लेख दिखाई पड़े।

१. (क) ४ चौथी पंक्ति के अन्त में (× चिह्न) तीर्थंकर महाबीर की मूर्ति (१८×१० अंगुल) हैं, जिसे लोग बुद्ध मूर्ति समझते हैं। इसकी पीठ पर सामने लेख हैं—

"सं ११९२ आल्हणपत्नी बीजलपुत्री देधइ पुत्र सढल द्वितीया सुता ताल्ही"।

ताल्ही दायिका का नाम है। और सं० ११९२ (११३५ ई०) विक्रम संवत् हो सकता है। मूर्ति बीच में तथा पद्मासनासीन है, जिसके नीचे तीर्थंकर महाबीर का लांछन सिंह है। घेरे में और भी कितनी ही तीर्थंकर-मूर्तियां हैं।

२ (ख) की तीसरी पंक्ति में ७×५ अंगुल की बरदमुद्रा-सीन बुद्धमूर्ति पर लिखा है।

"देयधर्मोयं सुप्राजिकाया:" (सुप्राजिका दान)। अक्षर विहार में पाये गये सातवीं आठवीं शताब्दी के हैं।

३ (ख) की चौथी पंक्ति मे ११ × ८ अंगुल की अक्षोभ्य-मुद्रासीन बुद्ध मूर्ति पर--

"७ देयधर्मोयं उपासिकाय सियाय सर्व सत्त्वातानां अनुतर-फलाप्तवाये" ( उपासिका सिया का दान सभी प्राणियों को अनुपम फल की प्राप्ति के लिये ।)

इसके भी अक्षर विहार की सातवी आठवीं शताब्दी के हैं।

कुछ मूर्तियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं। मैंने कुछ फोटो भी लिये हैं। जब मैं इन मूर्तियों के देखने में लगा था, उसी समय धर्मवर्धन की नजर एक चौकी पर पड़ी जिसपर २८ पत्थर की छोटी छोटी मूर्तियाँ हैं। यह अधिकतर संगमर्मर की हैं, इनमें दो तो बोध-गया के मन्दिर के नमूने हैं। इन मूर्तियों की सुरक्षा के लिये कोई खास ध्यान नहीं रखा गया है. इसलिये इनमें से कुछ हमारे पीछे आनेवालों को शायद ही देखने को मिलें।

अन्त में प्रासाद के महाकाल को देख कर हमें दर्शन समाप्त करना पड़ा। महाकाल के पास कपड़ों से ढका तांबे का एक कटाह है, इसके पानी के बारे में कहा जाता है, कि वह कभी नहीं सूखता। लोग चिराग के धुंधले प्रकाश में उस पानी में तरह तरह की चीजें देखते हैं। मुझे भी देखने को कहा गया। मैंने कहा—इतने बड़े कड़ाह की क्या जरूरत है, अंगुली के नख पर तो मैं तुम्हें

तीनों लोक दिखला सकता हूँ। बशर्ते कि प्रज्ञाशून्य उत्कट भक्ति तुममें हो। एक साथी ने मेरी बिजुली का टार्च इस्तेमाल करना शुरू किया। मैंने कहा—क्या कर रहे हो। इन अमंगल चीजों की सहायता से देवताओं का प्रताप नहीं देखा जा सकता।

इस प्रकार सूर्यास्त होने पर हम अपने स्थान पर लौटे। चौदह तारीख के सवेरे गु-रिम्-छुग्-पे-ल्ह-खङ् से प्राप्त कागज और तालपत्र की पुस्तकों को देखने लगे। कागज वाली पोथी वार्तिकालंकार के बारे में लिख चुका हूँ। तालवाली पोथी की जाँच परताल करने पर उसमें ११ पुस्तकों के खंडित पत्रे मिले।

———

मब्-जा
२८-१०-३४

तिब्बत में सभी भाइयों की एक पत्नी होने से घर और सम्पति का बँटवारा नहीं होता। कभी कभी इस नियम का अपवाद भी देखा जाता है। स-क्य के एक महन्तराज दग्-छेन्-बङ्-दुस्-ञिङ्-पो के दो पुत्रों पद्म-दुस्-द्ल्-वङ्-छुग् और दुग्-छेन्-कुन्-ग-रिन्-छेन् ने अलग अलग शादियाँ कीं। पीछे एकाध और अपवाद हुये, जिससे चार महल हो गये। पीछे दो के निस्सन्तान मर जाने से अब फिर दो महल रह गये हैं। परम्परा इस प्रकार है—

( दग्-छेन् ) वङ्-दस-ञिङ्-पो

पद्म-दुस्-दुल्-वङ् (डोल्-म) ( दग-छेन् ) कुन्-गऽ-रिन्-छेन् ( फुन्-छोग् )

(दग-छेन्) ट-शी-रिन्-छेन् (दग्-छेन्) कुन्-गऽ-सो-नम्

कुन्-ग-ञिङ्-पो

( दग्-छेन् ) ठिन्-ले-रिन्-छेन् (६४ वर्ष) (दग्-छेन्) जम्-लिङ्-छे-गु-वङ्-दुस्

कुन्-ग-रिन्-छेन् (३३ वर्ष) कुन-ग-ग्यल्-छन् (३२ वर्ष)

*जम्-यङ्-कुन् ड्डुब्-ग-ग्यल-छेन् (३५ वर्ष) थुब-तन्-खे-(मृत)

कुन्-ग-सो-नम् (५ वर्ष) कुन्-ग-ठिन्-ले-टशी (३ वर्ष)
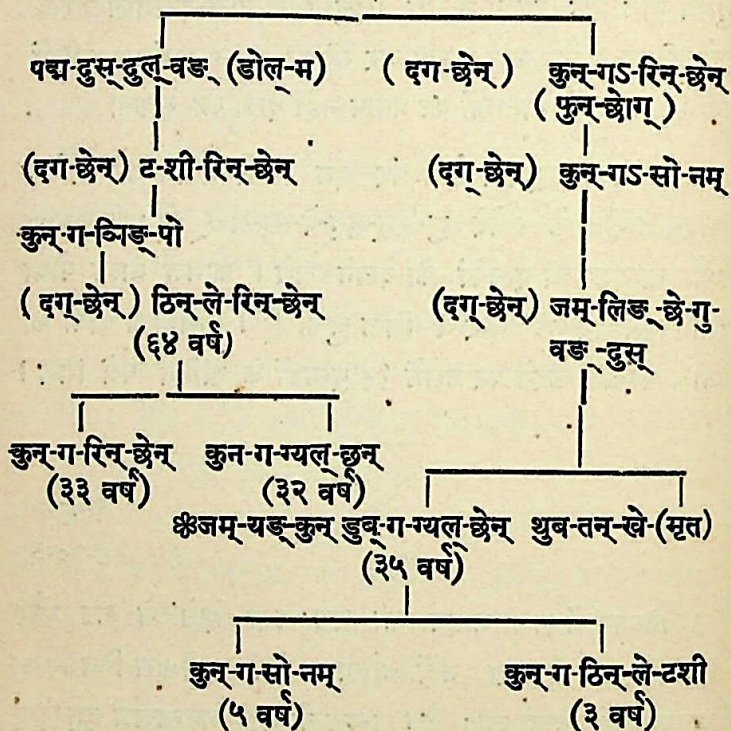
स-क्य-मठ के संस्थापक ( खोन् ) कोन्-र्च्यल् (१०३४-११०२ ई० ) स्वयं गृहस्थ थे। स-पण (११८२-१२५१ ई०) से लेकर तीन

---

*दो वर्ष हुये ठिन्-ले-रिन्-छेन् महन्तराज मर गये, अब उनके स्थान पर दग्-छेन् जम्-यङ् कुन्-ग-ग्यल्-छेन् दिसम्बर (१९३६) से गद्दी पर बैठे हैं।
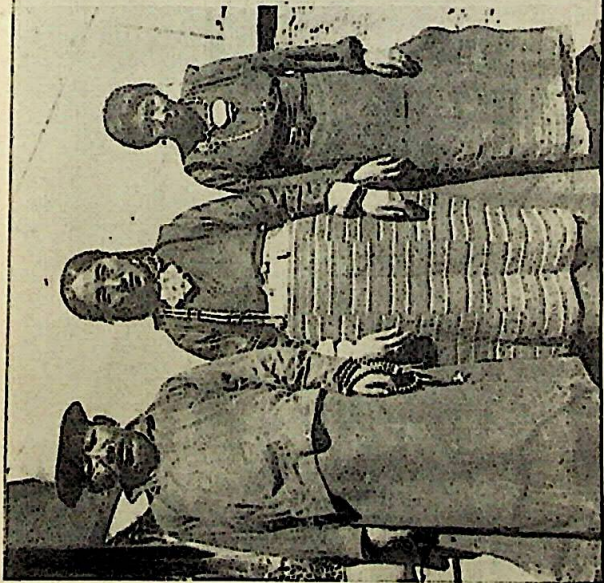
दीर्घायुश्री देवी नौकरोंके साथ

स-क्य—मन्त्री और डोनी-छेन्-पो ( पृष्ठ ९९ )

स-क्य – फुन्-छोग् प्रासाद ( पृष्ठ ११६ )
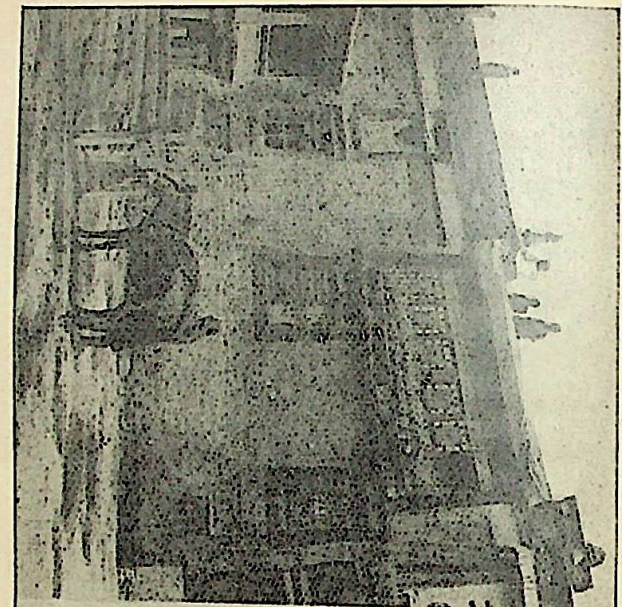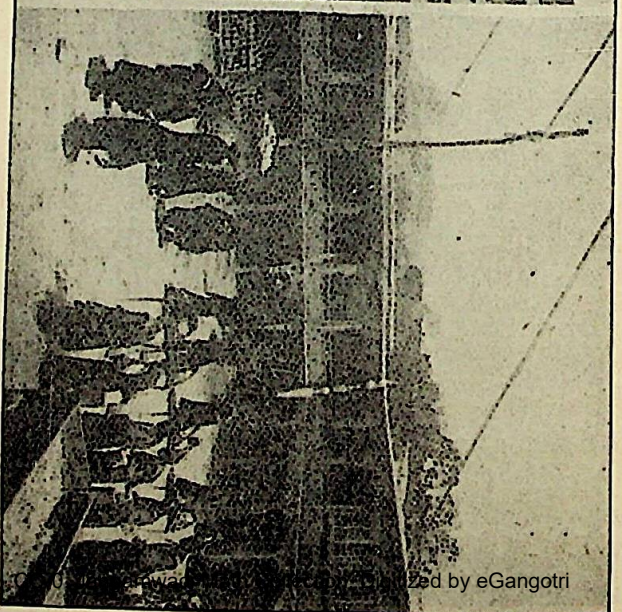
स-क्य–नृत्य, सम्भ्रान्त ( पृष्ठ ११५ )

चार पीढ़ी तक ही भिक्षु महन्त हुये। इसके वाद, फिर गृहस्थ ही महन्त होने लगे और अब तक यही प्रथा जारी है। जबसे गृहस्थ महन्त होने लगे तभी से उनको दग्-छेन् (=महात्मा) की पदवी मिली। आर्यसमाज में भी गृहस्थ महापुरुष को स्वामी न कह सकने के कारण महात्मा का नाम पहिले पहिले महात्मा मुंशीराम को और फिर महात्मा हंसराज को दिया गया। यही नाम पीछे महात्मा गांधी के मत्थे मढ़ा जाकर इतना प्रसिद्ध हुआ। भोट के स-क्य महन्तराजों ने इस नाम को प्रायः ६ शताब्दियों से अपनाया है।

उत्तराधिकार का नियम—दोनों महलों में ज्येष्ठ सन्तान उत्तराधिकारी होता है। दो होने पर आयु में बड़ा गद्दी पर बैठता है। उदाहरणार्थ वर्तमान महन्तराज (दग्-छेन्) ठिन्-ले-रिन्-छेन् के वाद उनका ज्येष्ठ पुत्र कुन्-ग-रिन्-छेन् गद्दी पर न बैठ फुन्-छोग्-महल के लामा जम्-यङ्-कुन्-ग-ग्यंल्-छेन् गद्दी पर बैठेंगे। उनके बाद कुन्-ग-रिन्-छेन् (डोल्-म्) का नम्बर आयेगा और फिर ५ वर्ष का बालक कुन्-ग-सो-नम् (फुन्-छोग्) उत्तराधिकारी होगा। दोनों महलों में कोई ज्येष्ठ सन्तान न होने पर ही कनिष्ट सन्तान उत्तराधिकारी हो सकेगा।

१३ तारीख को ही फुन्-छोग्-फो-ब्रङ् के लामा का बुलावा आया था; किन्तु, उस दिन और कामों के कारण नहीं जा सके। १४ तारीख को ११ बजे चले। नदी पार हो महाबिहार और

डोल्-मा-फोब्रङ् की बगल से होते प्रायः मील भर चल हम फुन्-छोग्-फो-ब्रङ पहुँचे। तिब्बत के दस्तूर के मुताबिक आधा घंटा प्रतीक्षा-गृह में इन्तजार करना पड़ा। फिर भीतर गये। लामा कान में फीरोजा जटित कुंडल पहिने एक बड़े सिंहासन पर विराजमान थे। उन्होंने हँसते तथा हमारे लिये रक्खे आसन की ओर इशारा करते स्वागत किया। हमने भी रिन्-पो-छे जू-दन्-जा ये-वे (रत्न! अच्छी तरह बिराजमान हैं?) कह आसन ग्रहण किया। हमारा आसन उतना ही नीचा था, जितना लामा का ऊँचा। लामा की उम्र ३५ वर्ष है। इनकी दो बड़ी कन्यायें और दो छोटे पुत्र हैं। सन्तानें पिता से बहुत सुन्दर हैं। सोचा—माँ के अनुरूप होंगी। किन्तु पीछे माँ को भी देखने पर घुणाक्षर-न्याय ही कहना पड़ा। १॥ बजे से ५॥ बजे तक वहीं रहे। लामा बड़े मधुर स्वभाव के हैं। बातें तरह तरह की होती रहीं। कभी भारत में बुद्धधर्म के बारे में। कभी मन्त्रयान के बारे में। और कभी स-क्य के पुराने लामों के बारे में। बीच में उनके तथा बच्चों के कितने हीं फोटो लिये। चलते वक्त चावल और आधी भेड़ का माँस भेंट मिली। यह भी आग्रह हुआ, कि दूसरी बार आने पर हमारे ही यहाँ ठहरा जाये। फोटो लेने के बाद हमारे लिये एक ऊँची कुर्सी—इतनी ऊँची कि पैर ज़मीन पर नहीं पहुंचता था—रक्खी गई। इस महल से यदि हमें कोई शिकायत हो सकती थी, तो आसन की मैं—यद्यपि तिब्बत में इसकी

गुंजायश नहीं—सो वह भी रफा हो गई। लोगों ने टिन में वंद कुछ खाने की चीजें लामा को चढ़ाई थीं किन्तु यहाँ वालों को तो बिस्कुट छोड़ माल्डम नहीं, कि इनमें क्या है। हमारे सामने विस्कुट के अतिरिक्त पनीर ( chease ) चोकोलेट के डव्वे रक्खे गये। पनीर के डिब्बे को खोलते हमने अपने हाथ के बाये अंगूठे में गहरा घाव कर लिया, जिसका चिन्ह फुन्-छोग्-फो-ब्रङ् के लामा के सुमधुर स्वागत की अच्छी स्मृति रहेगी।

तेर्-स ( तिङ्-रि )
२-११-३४

१५ अक्टूबर को विचार हुआ, वार्तिकालंकार का फोटो ले लें। कुछ थोड़े से फोटो लिये, किन्तु, छतपर होने पर भी तमाशबीन आ ही गये। वीच बीच में वह बात भी पूछने लगते थे। एक तो नौसिखिये फोटोग्राफर ठहरे, फिर फोकस् मिलाना, शटर बंद करना, नया फिल्म पैक लगाना आदि इतना काम था, कि वह तो अभ्यस्त के लिये भी उस परिस्थिति में मुश्किल था। नहीं कह सकते, कितने फोटो ठीक आये होंगे।

आखिर हमें काम बन्द कर देना पड़ा। कुछ भिक्षु लोग कल भी आकर लौट गये थे। आज वह फिर इन्तिजार कर रहे थे। उनसे थोड़ी देर बात की। आग्रह हो रहा था - अभिधर्मकोश की अपनी टीका को भोटभाषा में अनुवाद कर दीजिये। गोया यह कोई दालभात का निवाला था। अन्त में कहा गया—किसी

सूत्र का पाठारम्भ करायें। उनके लिये ग्य-गर् के लामा से पाठारम्भ कराना भी अधिक पुण्य का काम है, घंटे-डेढ़ घंटे में पिंड छूटा। वार्तिकालंकार लिखने को हम उकता रहे थे।

सोचा—फोटो तो अभी धुलकर देखा नहीं गया, दैव भरोसे खेती है। कहीं कुछ नहीं आया तो अफसोस होगा। इसलिये कम से कम एक परिच्छेद तो लिख लेना चाहिये। श्लोकों में गणना करने पर इस परिच्छेद में प्रायः अठारह सौ श्लोक होंगे। पहिले तो चार पांच ही पृष्ठ होता रहा, किन्तु पीछे छ पृष्ठ का नियम कर लिया। इसके कारण एक एक दो दो बजे रात तक जागना पड़ा, और इस प्रकार पहिला परिच्छेद २३ अक्तूबर ग्यारह बजे रात को समाप्त हुआ।

× × ×

पहिले हम स्तूपों और मूर्तियों के भीतर तालपत्र की पोथियों के डालने की वात को सुनकर बहुत झुँझलाते थे; किन्तु, स-क्य मठ की हजारों तालपत्र की पुस्तकों की जो दशा हुई उसे देख कर कहना पड़ता है—बाहर रखकर पत्रों को फाड़ फाड़ परसादी बाँटने से तो उनका स्तूपों में डाल देना ही अच्छा है। भविष्य में कभी तो उनके मिलने की आशा है। स-क्य के ल्ह-खङ्-छेन्-मो में आचार्य धर्मकीर्ति की एक मूर्ति है। पहिले धर्मवर्धन उसकी तसवीर खींचना चाहते थे; किन्तु, पीछे देखने पर मूर्ति बिल्कुल साधारण मालूम हुई, और उन्होंने उस

ख्याल को छोड़ दिया। कहते हैं उस मूर्ति के भीतर धर्मकीर्ति का प्रधान ग्रंथ प्रमाणवार्तिक रक्खा है।

फुन्-छोग्-फो-ब्रङ् के लामा को पता लगा था, गु-रिम्-ल-म-ल्ह-खङ् में बहुत सी तालपत्र की पुस्तकें हैं। एक ने तो बतलाया तीन बड़े बड़े टोकरे भरे हैं। खैर, इतना सुनने मात्र से तो हम फूले-न-समाते हो नहीं सकते थे। १५ अक्तूबर को धर्मवर्धन जाकर तालपत्रों के तीन छोटे छोटे बण्डल लाये। कह रहे थे—इतनी अधिक धूल तो हमने अपनी जिन्दगी भर में नहीं देखी। हमारे पास आये वंडल भी काफी धूल रखते थे। देखने पर मालूम हुआ, सैकड़ों पुस्तकों के वह एक एक दो दो पत्रे हैं। सूची बनाना फजूल था।

बाद में एकान्त मन से वार्तिकालंकार का लिखना जारी रहा। अठारह तारीख को धर्मवर्धन ने वैशाली (बसाढ़, जि० मुजफ्फरपुर) के कायस्थ पंडित गयाधर की मूर्ति की तस्वीर उतारी। पंडित गयाधर—जो आजकल यहाँ सिद्ध गयाधर कहे जाते हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भोट आये, और कितने ही वर्षों तक रहे थे। डोग्-मि-लो-च ने इनकी सहायता से कुछ पुस्तकों का अनुवाद किया था। इसके लिये उसने तीन सौ तोला सोना बिदाई दी थी। स-क्य लामों की तांत्रिक गुरुपरम्परा में होने से यहाँ उनकी मूर्ति रक्खी गई है। बसाढ़ में कुछ कायस्थ घर हैं या नहीं—

मैं नहीं कह सकता। पता लगाने पर शायद आज भी विहार में पंडित गयाधर के वंशज मिल जायें। पंडित गयाधर संस्कृत के विद्वान होते हुये प्राचीन हिन्दी के भी कवि थे। उनकी एक कविता पुस्तक का तन्-जुर में अनुवाद है।

१६ से १८ तारीख तक हमारे घर की मालकिन चम्-छुङ्-कु-शो छे-रिङ्-पल्-मो (दीर्घायुश्री) लोकेश्वर का न्यू-ने व्रत कर रही थीं। यह वही व्रत है, जिसे मैंने भी अपनी पिछली यात्रा में शुरू किया था, किन्तु दोपहर भर की दंडवत में ही परेशान हो छोड़ दिया था। श्रीमती दीर्घायुश्री मेरी तरह श्रद्धाशून्य नहीं हैं। वह साल में ऐसे कितने ही न्यू-ने व्रत किया करती हैं। २० तारीख को मैंने एक गलती की। दीर्घायुश्री वहाँ बैठी थीं। वार्तिकालंकार लिखते समय कभी कभी काम की चीज आने पर मैं धर्मवर्धन से बात करने लगता था। उस वक्त वार्तिकालंकार की एक पंक्ति लिख रहा था—

"बालक्रीडामिव सकलमेव संसारसुखार्थं धर्मसाधनमुत्पश्यतां।"

धर्म-साधनको बालक्रीडा से उपमा देने की बात मैं धर्मवर्धन से कह रहा था। बीच में श्रीमती बोल उठीं—क्या बात कही। अन्त में मुझे उनके न्यू-ने का उदाहरण देना पड़ा। मुझे अफसोस हुआ कि दीर्घायुश्री के हृदय पर उन वाक्यों से आघात पहुँचा
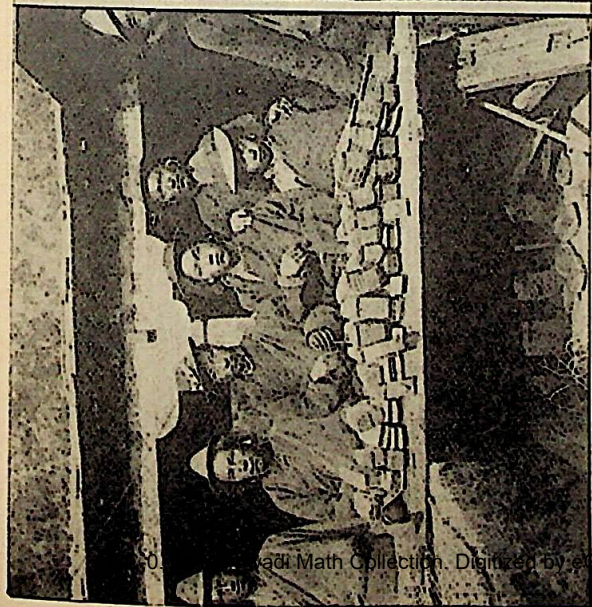
स-क्य——तालपत्रकी पोथियां
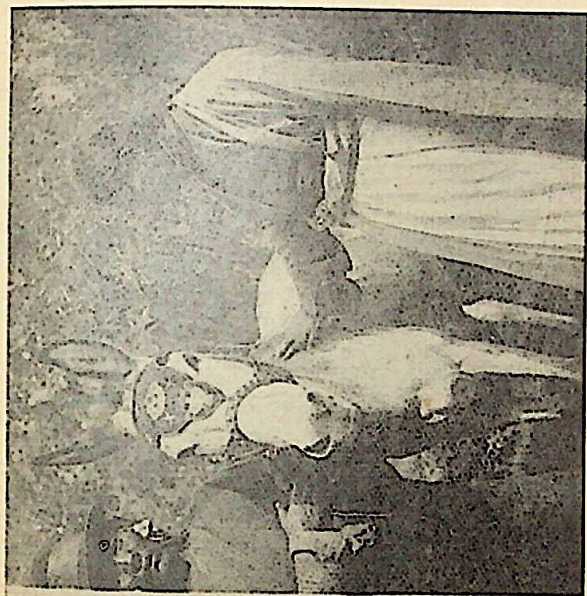
एक तिब्बती महिला और उसका खच्चर

स-क्य—दीर्घायुश्री देवी ( पृष्ठ १२१ )
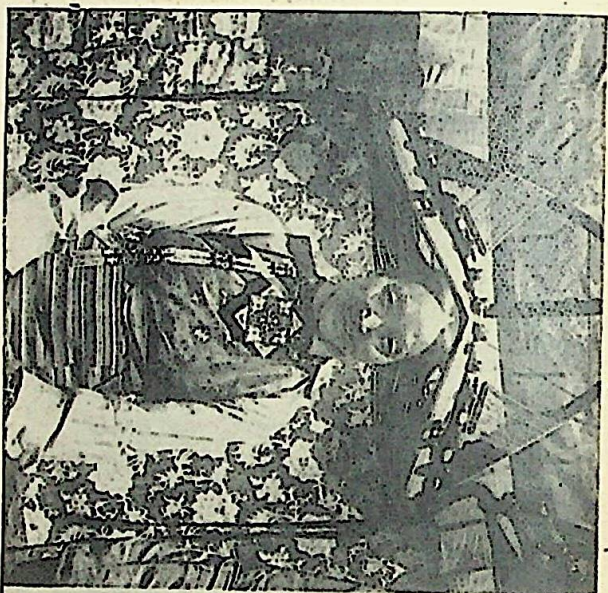
स-क्य – सूत कातना
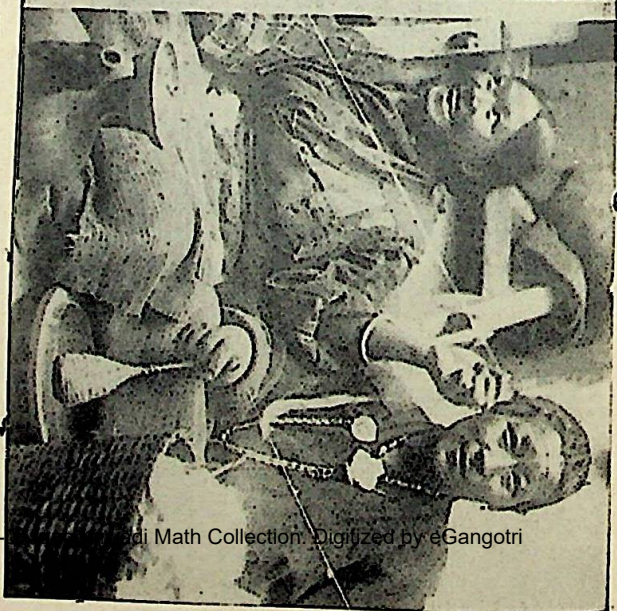
होगा। तो भी दूसरे दिन मैंने देखा, वह उसे भूल गई था। तिव्वत की सारी यात्रा में श्रीमती दीर्घायुश्री और उनके पति कु-शो-डोङ्-यिग्-छेन्-पो से बढ़कर सहृदय व्यक्ति नहीं मिले। उनमें भी दीर्घायु-श्री का व्यवहार अत्यन्त मधुर था। वह हमारे खाने पीने की ओर बहुत ध्यान रखती थीं। वह कुछ पठित और अधिक संस्कृत तथा मेधाविनी महिला हैं। इस दम्पती को कोई सन्तान नहीं है। उस दिन न्यू-न्ने की चर्चा करते वक्त मैंने एक दृष्टान्त दिया—एक भद्र महिला ने न्यू-नेव्रत किया। तीसरे दिन पारना के लिये नौकरानी थुक्-पा (सूप) तय्यार करके लाई। थुक्-पा में नमक थोड़ा कम था। मालकिन ने चखते ही नौकरानी के मुँह पर थप्पड़ मारा। बताओ, न्यू-न्ने का सारा पुण्य चला गया या नहीं। दीर्घायुश्री ने शांतिपूर्वक कहा—मारा कहाँ, जरा सा डांटा तो। बात यह थी, कि हमारी चम्-कु-शोने अपनी नौकरानी चङ्-लाके साथ उस दिन पारण करते वक्त ऐसा ही व्यवहार किया था। जिसका कि मुझे जरा भी पता न था। लोग ऐसे ही सिद्ध होते होंगे न।

२३ अक्तूबर के वार्तिकालंकार के लिखने का काम समाप्त हो गया। २४ को वार्तिकालंकार के फोटो लिये। न लिखे परिच्छेद के दुहरे फोटो लिये।

× × ×

श्रीविलियम्सन (पोलिटिकल एजंट, शिकम) इस वर्ष स-क्य आये थे। साथ में उनकी पत्नी भी थीं। श्रीमती विलियम्सन के बारे में चाम्-कुशो दीर्घायुश्री का कहना था—क्या है, भिखमंगिन की तरह आई थी, न कानों में आभूषण और न कंठ में माला। मैंने कहा—और न शरपर पै-गोर (धनुषाकार शिरोभूषण जो चाङ् की स्त्रियां धारण करती हैं)। पिछली वार श्री विलियम्सन से मिलते वक्त श्रीमती वहां न थीं। यदि फिर मिलने का मौका हुआ—तो श्रीमती विलियम्सन से कहूँगा—आप दूसरी वार भिखमंगिन के भेष में न जायें, अवश्य पै-गोर धारण करके जायें। और उसके लिये बालों को पहिले से बढ़ा रक्खें।

२५ तारीख को गु-रिम्-ल्ह्-ल्ह-खङ् के एक दर्जन पुराने चित्रपटों का फोटो लिया। और आये हुये आदमी के साथ फुन-फोन्-छोग्-फो-ब्रङ् के लिये चल दिया। लामा ने भारत आने की इच्छा प्रगट की, किन्तु, आना मुश्किल है। मैंने भारत के बौद्ध तीर्थों का रास्ता बतला दिया, और यह भी कह दिया—यदि पहिले से मुझे खबर मिलेगी, तो मैं साथ चलकर सभी पवित्र स्थानों को दिखलाऊँगा। उन्होंने ६ लकड़ी और दो पीतल की मूर्तियाँ प्रदान कीं। सूर्यास्त बाद हम स्थान पर लौटे। आज हमारे लिये मब्-जा (कु-शो डोङ्-यिग्-छेन्-पो का गाँव) से

घोड़े आने वाले थे; किन्तु, न आये। अब कल भी प्रस्थान करने की आशा नहीं रही।

दूसरे दिन हम फिर ग्य-ल्ह-खङ् गये, और वहाँ की बहुत सी भारतीय मूर्तियों के फोटो लिये। बोधगया मंदिर के पत्थर के नमूनों के भी फोटो लिये। आज शाम को घोड़े भी आगये।

# चतुर्थ खण्ड

## ञेनम् की ओर

२६ अक्टूबर को सत्रहवें दिन स-क्य को आठ बजे सवेरे छोड़ा। यदि भोट में किसी स्थान को अफ़सोस के साथ छोड़ना पड़ा तो वह स-क्य ही है। यहाँ सबसे अधिक सहृदय जन मिले। जिस दिन स-क्य आये थे तब से अब सर्दी अधिक बढ़ गई थी। रास्ते में पानी की नालियाँ बर्फ़ हो गई थीं। चङ्-मा (वीरी) की पत्तियाँ सूख गई थीं, और गिरने के लिये हवा के झोकों की प्रतीक्षा कर रही थीं। स-क्य-उपत्यका जो कभी हरे मखमल के फ़र्श के समान दिखाई पड़ती थी सभी घासें पीली हो गई थीं। हमारे रास्ते से हट कर लाल-काली-सफ़ेद खड़ी रेखाओं से अंकित कितने ही घर पड़े। कुछ उजड़े गाँवों की टूटी दीवारों को दाहने बायें छोड़ते हम जनशून्य उपत्यका की ओर चढ़ने लगे। आख़िरी दो मील छोड़ चढ़ाई आसान रही। इस जोत का नाम डोङ्-मो-ला है। डोङ् जंगली चँवरियों को कहते हैं, जिनका अब इधर नाम नहीं है। शायद पहले रहती होंगी! उतराई उतरकर हम पानी की धार के किनारे आये। हमने साथियों से कहा—यह गंगा-नदी का पानी है।

और यह है ही, क्योंकि इस धार का पानी कोसी से होकर गंगा में जाता है। डेढ़ बजे हम लोग छु-शोर-ग्य-पोन् गाँव में पहुँचे। यहाँ घोड़ों को चारा दिया गया, और हम लोगों ने चाय पी।

इस उपत्यका में भी कितने ही मठों और वस्तियों के ध्वंसावशेष हैं। धार की दाहनी ओर थोड़ा-सा ऊपर कितने स्तूप हैं और नीचे जाने पर दाहने तट पर ल्ह-दोङ् गाँव है, यह कभी बड़ा गाँव था जिसके पास में एक बड़ा मठ था। किन्तु अब कुछ ही घर बच रहे हैं। एक हमारा देश है, जहाँ लोगों को जोतने के लिए ज़मीन नहीं मिल रही है, और एक यह देश है, जहाँ पहले के आबाद खेत छोड़ दिये गये। इसका कारण घर भर के लिये एक पत्नी की प्रथा के अतिरिक्त अधिक लोगों का साधु होना हैं। एक तरह कहा जा सकता है कि इतने गाँवों के उजाड़ने का दोष यहाँ के धर्म को है। बाईं ओर हटकर आसाधारण ऊँची दीवारोंवाला एक ध्वस्त गाँव दिखाई पड़ा। पूछने पर मालूम हुआ कि पहले यहाँ मोन लोग रहते थे, जिन्हें राजा मि-वङ्-तोब्-ग्यस् (१७२७ ई०) ने उजाड़ दिया। सूर्यास्त के समय हम मव्-जा गाँव में पहुँचे। कु-शो-डोङ्-यग्-छेन्-पो के साले तथा श्रीमती दीर्घायुश्री के बड़े भाई कु-शो-डोङ्-यिग्-ला ने चाय से स्वागत किया। यह स्थान पन्द्रह हज़ार फ़ुट से ऊपर होने के कारण अधिक सर्द था, ऊपर से हवा चल रही थी।

दस वर्ष पहले के बने पद्मसंभव के मंदिर में हमारा आसन लगा। मंदिर साफ़ तथा सुन्दर रीति से चित्रित है।

२८ तारीख़ ( अक्तूबर ) को मब्-जा में ही रहना था। हवा के तेज़ होने से बाहर निकलने की हिम्मत नहीं थी। कु-शो से बात करते वक्त मालूम हुआ कि स-क्य मठ के पास अब भी एक छोटा-सा राज्य है, जिसमें प्रायः दो सौ गाँव और दो हज़ार घर हैं। इनके अतिरिक्त खम् प्रदेश में भी कुछ मिलकियत है।

कु-शो-डोङ-यिक्-छेन-पो को कोई सन्तान नहीं है, यह पहले कह आये हैं। तिब्बत में पुत्र न होने पर पुत्री के लिए घरजामाई (मग्-पा) लिया जा सकता है। कोई सन्तान न होने पर किसी दूसरे सम्बन्धी या प्रिय व्यक्ति को उत्तराधिकारी बना सकते हैं। इसी नियम के अनुसार कु-शो-डोङ्-यिक्-छेन्-पो ने अपने साले को उत्तराधिकारी बनाया। किन्तु उनको भी कोई सन्तान नहीं। इसी बातचीत में हमने कु-शो से उत्तराधिकार के बारे में पूछा। मालूम हुआ, सम्पत्ति का स्वामी बड़ा लड़का होता है। छोटा लड़का यदि अलग शादी करे तो उसे खाने के लिए कुछ मिल जाता है, पूरा बराबर का हिस्सा नहीं। लड़का न होने पर पुत्री मालिक होती है। उसके भी न होने पर किसी दूसरे को उत्तराधिकारी बना सकते हैं, किन्तु गाँव के मालिक का सहमत होना ज़रूरी है। सरकार के पास या स-क्य जैसे राज्य

के दफ़र में हर गाँव के प्रत्येक खेत का नाम (नंबर नहीं, क्योंकि यहाँ अभी तक नक़्शा नहीं बना) तथा परिमाण (खेत में बोये जाने वाले बीज के हिसाब से ॐ) और मालिक के घर का नाम लिखा रहता है। मालिक घर समझा जाता है, व्यक्ति नहीं। पुत्रों में खेत का बँटवारा न होने से यहाँ दाख़िल ख़ारिज का झगड़ा नहीं।

मब्-जा से तिङ्-रि तक के लिए ३३ साङ् (प्रायः नौ रुपये) पर तीन ख़च्चर मिले, और २९ अक्तूबर को आठ बजे सबेरे हमने मब्-जा छोड़ा। यद्यपि हम नीचे की ओर जा रहे थे, तो भी रास्ता समतल सा था। उपत्यका भी बहुत चौड़ी थी। उपत्यका के दाहने छोर पर एक योगिराज एकान्तवास कर रहे हैं। पाँच वर्ष से ये एक कोठरी में बन्द हैं। सिर्फ़ एक छोटा सा छेद है, जिससे भक्त लोग हर तीसरे चौथे पानी, ईंधन और ख की चीज़ें पहुँचा दिया करते हैं। जब तक सिद्ध न हो जायँगे तब तक बाहर नहीं निकलेंगे—यही उनकी प्रतिज्ञा है। एक गाँव को पारकर हमारा रास्ता दाहिनी ओर को मुड़ा। नीचे दूर तक नदी के बायें ओर छोन्-दु का मठ है। किसी समय यह एक सुन्दर विशाल मठ था, किन्तु अब दो तीन देवालियों और कुछ स्तूपों को छोड़कर बाक़ी ध्वस्त हो गये हैं। हमारा रास्ता

ॐ भारत में भी पहले यही क्रम था। पाणिनि ने "तस्य वापः"—सूत्र से इसे प्रकट किया है।

बिलकुल दाहिनी ओर मुड़ गया। और थोड़ा आगे नदी भी भूल भटक कर उधर ही चली आई। एक पहाड़ी की परिक्रमा कर हम नि-शा की उपत्यका में पहुँचे।

× × ×

आज दो सप्ताह बाद बाक़ी यात्रा को आरम्भ करता हूँ। कारण इस वर्णन से ही मालूम हो जायगा।

३ नवम्बर को सवेरे ही चलना था; किन्तु घोड़े १० बजे से पहले नहीं आ सके। इस बीच में मेज़बान से तरह तरह की बातें होती रहीं। एक बात से तो वे बड़े चकित और कुछ भयभीत-से हो गये, यद्यपि मेरे साथी धर्मवर्धन को उस वक्त अपनी हँसी रोकनी मुश्किल हो रही थी।

गृहपति ने कहा—देखिए, पिछले साल (३ अप्रैल १९३३) हमारे च-मो-लोङ्-मा (योरेस्ट) पर्वत पर कोई अँगरेज़ हवाई जहाज़ पर पहुँचा था। ये लोग किस वास्ते ऐसा करते हैं?

मैंने कहा—वह संसार का सबसे ऊँचा पर्वत है, इस लिए उस पर पहुँच कर अपने नाम को अमर करने की सबकी इच्छा होती है।

उन्होंने देवी-देवताओं की नाराज़गी की बात कही।

मैंने कहा—यहाँ देवी-देवता की नाराज़गी की बात नहीं करनी है। वे तो बेचारे सहानुभूति के पात्र हैं। यदि इस प्रकार

दो-चार बार जहाज़ उड़े तो उन्हें अपने स्थानों को छोड़कर भाग जाना पड़ेगा।

"क्यों और कहाँ?"

"क्योंकि हवाई जहाज़ में लगनेवाले तेल (पेट्रोल) की गंध देवताओं के लिए भयंकर है। कोयला-पानी आदि सभी कल में लगनेवाली चीजें उनके शत्रु हैं; किन्तु यह पेट्रोल तो ज़हर-हलाहल है। और मुझे तो तुम्हारे यहाँ के लिए ही नहीं, बल्कि अपने भारत से प्रवासित बहुत-से देवताओं-भूतों के लिए बहुत अफ़सोस है।"

"सो, क्यों?"

"जानते हो, जिस समय तुर्कों ने आकर भारत के पूजा-स्थानों को बर्बाद कर दिया उस वक्त भारत में लाखों देवता और भूत भूखों मरने लगे। लोग बलि ही नहीं दे सकते थे। उस समय एक भारतीय भूत जो तिब्बत में कई वर्ष से रह रहा था, जन्मभूमि के देखने की इच्छा से भारत लौटा। वहाँ उसने अपने जाति-बन्धुओं की फ़ाकेकशी देखी। उसने उनसे कहा—भाइयो! तिब्बत में वैसी मीठी मीठी बलि भेंट तो नहीं मिलती किन्तु शाम-सवेरे प्रत्येक घर में हमारी जाति के लिए लोग सत्तू की धूप देते हैं। कोई जातिभाई भूखा नहीं रह सकता। यह सुन कर लोग आपस में सलाह करने लगे। अन्त में कुछ अत्यन्त चटोरों को छोड़ कर सब उत्तराखंड की ओर चल पड़े। क्या

पूछते हो ? एक एक दिन में दस दस हज़ार भूत भारत से भोट की ओर चले।"

"दस दस हज़ार !"

"अरे ! दस हज़ार से भी अधिक। सो वे बेचारे आज तक यहाँ शान्तिपूर्वक जीवन-यापन करते थे। वे तुम्हें सताते नहीं थे, और तुम उनका साग-सत्तू से सत्कार करते रहे। भारत में जो भूत रह गये, पीछे रेल-मोटर आदि के आने पर वे भी भारत से भागने लगे। यदि हवाई जहाज़ इधर आये तो यहाँ भी उनकी खैरियत न होगी।"

"तो कहाँ जायँगे ?"

"शायद चाङ्-थङ् (तिब्बत का उत्तरी जन-शून्य मैदान) में चले जांय। किन्तु वहां भी कितने दिन ठहरेंगे ? हवाई जहाज़ों के। उधर भी कौन रोकेगा ?"

"अच्छा होगा, हम लोग बीमारी से बच जायँगे।"

"और तिब्बत के हज़ारों लामा जो भूखों मरने लगेंगे। भूतों-देवताओं के भाग जाने पर उनके डर से होनेवाले पुरश्चरण, जप, पाठ आदि लामों से करवाकर कौन उन्हें दक्षिणा देगा ?"

बेचारे गृहपति बड़ी चिन्ता में पड़ गये। इसी बीच घोड़े वाले आ गये। यद्यपि घोड़े एक तरह से मालिक की बेगार में हमें मिल रहे थे, तो भी दाम काम में लोग उस्ताद थे। वहां से कुत्ती भर (तीन दिन) के लिये पहले तो उन्होंने फी घोड़ा

६४ सङ् (१७ रुपये के ऊपर) मांगे। मैं तो झुँझला गया। फिर उन्होंने ३२ सङ् कहे। अन्त में १६ सङ् पर .फैसला हुआ। ग्यारह बजे हम किसी तरह रवाना हुए।

आज ६-७ मील आगे लङ्-कोर में ही रहना था। घोड़े तेज़ मालूम होते थे। धर्मवर्धन का घोड़ा तो एक बार भड़ककर उन्हें बेरास्ते थोड़ी दूर खींच भी ले गया, लेकिन रास्ता मैदान का था। एक जगह पानी से .जमीन में कीचड़ थीं। हमारे घोड़े का पैर फिसल गया, और वह धीरे से .जमीन पर आ बैठा। हमारे सारे कपड़ों पर कीचड़ पड़ गई। रास्ते में घोड़ेवालों ने अपने गाँव में दो घण्टे रोक रक्खा। जब चले तब हवा तेज और सामने की थी। सर्दी का क्या पूछना—प्रायः पन्द्रह हज़ार फ़ुट की ऊँचाई और नवम्बर के दिन। खैर, किसी तरह चार बजे लङ्-कोर् पहुँचे। लङ्-कोर भारतीय सिद्ध फ-दम्-प-सङ्-ग्यें-स् का बहुत दिनों तक निवासस्थान रहा है। यहां रहकर उन्होंने कितनी ही पुस्तकें भी भोटभाषा में अनूदित की थीं। यद्यपि किसी संस्कृत-पुस्तक की आशा तो न थी, तो भी वहां के पुराने मठ और उक्त सिद्ध की मूर्ति के देखने की बहुत इच्छा थी। सामान गांव के वैद्य के घर में रक्खा गया, और हम एक साथी को लेकर मन्दिर में पहुँचे। पुजारी के कुछ देर बाद आने पर भीतर गये। विहार और उसके बनाने का ढङ्ग पुराना है। बड़े और अँधेरे सभा-मण्डप के भीतर गर्भ-मन्दिर है। सभा-

मण्डप की एक तरफ़ पुराने हस्तलिखित कन्-जुर की पुस्तकें ईंटों की छल्ली की भांति रक्खी गई हैं। गर्भगृह में प्रधान मूर्ति फ-दम-पा की है। साथ ही तीन-चार पीतल की सुन्दर मूर्तियाँ हैं, जो बनावट से भारतीय जान पड़ती हैं। प्रकाश की अल्पता और पुजारी के रूखेपन से फोटो नहीं ले सके। कल सवेरे चलने का निश्चय कर सो गये। रात को साथियों की आवाज़ से आँख खुल गई। वे घोड़ों को कस रहे थे। समझा, समय हो गया होगा। सब ठीक होने पर घड़ी देखी ! अभी तो ढाई ही बजे थे। हमने कहा, अभी रात तीन घंटे से अधिक है। थोड़ी देर वे चुप रहे। किन्तु वहाँ घड़ी की बात कौन मानता है ? अन्त में सवा तीन बजे ही हमें चलने पर मजबूर होना पड़ा। एक ओर अँधेरे में इस निर्जन रास्ते में चोरों का भय था, और दूसरी ओर ऊँच-नीचे और संकीर्ण रास्ते में ठोकर खाकर पचीस पचास हाथ नीचे गिरने का डर था। तो भी सोचते थे. अधिक दिन चढ़ने पर हवा के तेज़ होने से ऊपर ठठुरना पड़ेगा। धर्मवर्धन तो पहले से ही सवार हो गये, किन्तु हम संकीर्ण पहाड़ी घुमाव के डर से कुछ देर पैदल चले। थोड़ी देर घोड़े पर चढ़ने के बाद फिर हमें उतर कर ही उजाला होने तक चलना पड़ा। हवा तेज़ तथा हड्डी को बेधकर निकल जानेवाली थीं। किसी तरह काँपते-काँपते हम आगे बढ़ रहे थे। साढ़े आठ बजे तक चलने के बाद एक चट्टान की ओट में खूब ओढ़ना ओढ़ कर घंटे भर विश्राम

ऊपर—थोङ्-ला—बकीली नदी

नीचे—डोङ्-मो-ला—जोतपर ( पृ० १२६ )

ऊपर—थोङ्-ला—कोतल ( पृ० १२३ )
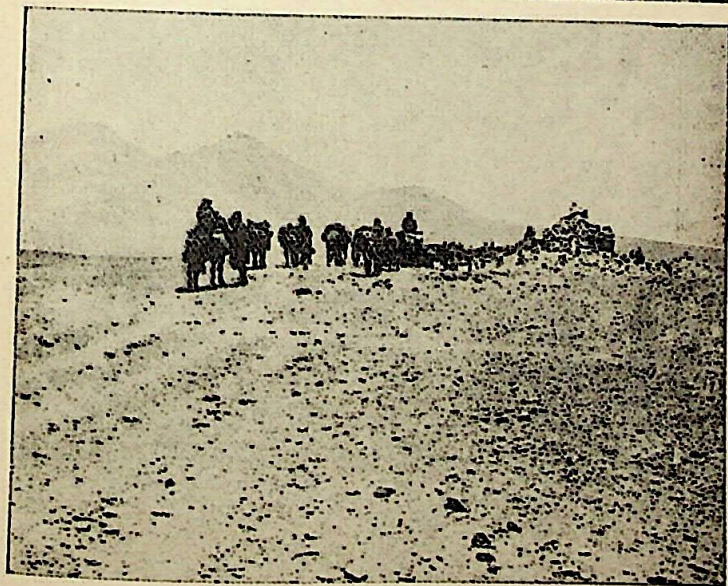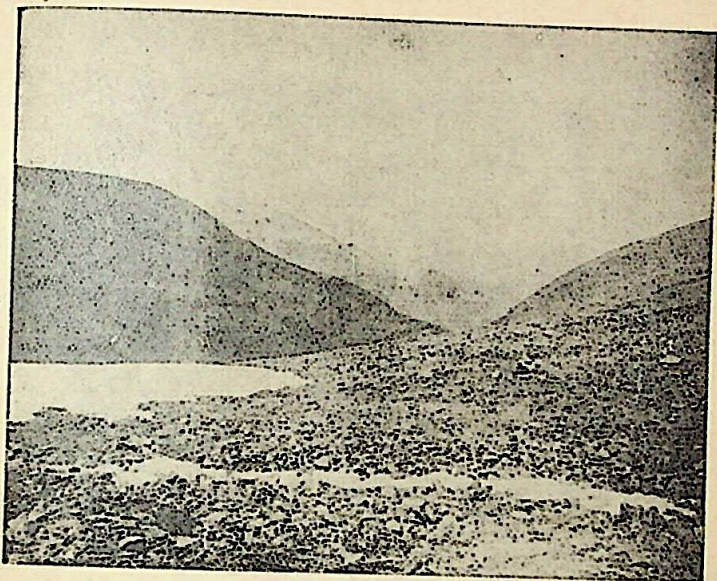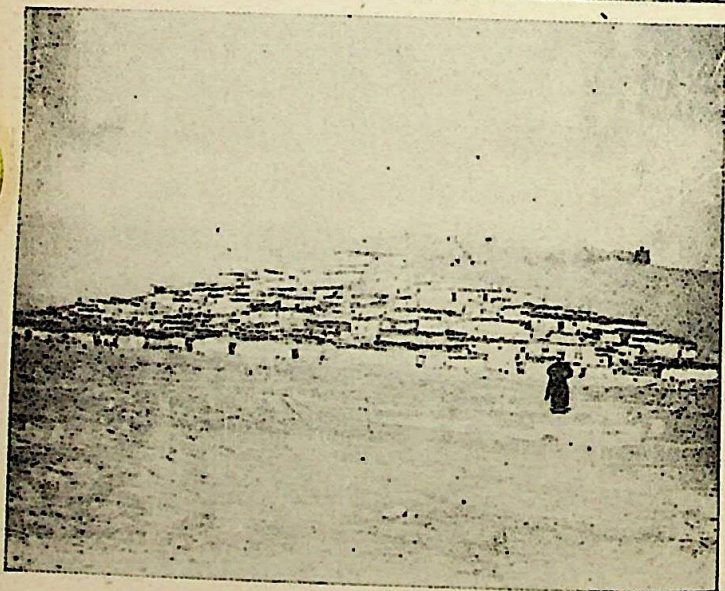


नीचे—तिङ्-री ( पृ० १२७ )

के लिए पड़ रहे। अन्त में साढ़े बारह बजे थोङ्-ला जोत के ऊपर पहुँचे। आज बादल नहीं था, इससे दिल बहुत मजबूत था। थोङ्-ला पर बर्फ़ पड़ने पर कितनी ही बार यात्रियों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है—विशेषकर जाड़े के दिनों में।

तीन मील के क़रीब उतरने पर नीचे के गाँववालों की उदारता से बने एक छोटे टिकाव पर हमारे साथी फिर कुछ खाने-पीने के लिए ठहर गये। आड़ में आकर हम थोड़ी देर के लिए ठंडी हवा के झोंकों से बच गये। बर्फ़ पड़ते वक्त तो यह स्थान कितने ही बटोहियों की जान बचाता होगा।

बहुत काफ़ी उतराई उतर कर अन्त में अँधेरा होते वक्त थुलुङ् गाँव में पहुँचे। पिछली यात्रा में भी इस गाँव में मैं ठहर चुका था। किन्तु उस समय का ठहरना अपने स्वर्गीय मित्र सुमतिप्रज्ञ के परिचय से हुआ था। कई घरों में पूछने पर हम दो आदमियों के लिए जगह मिल रही थी, किन्तु हमें अपने तीन घोड़ेवालों को भी तो साथ रखना था। आख़िर एक ग़रीब आदमी हमें अपने घर ले गया। जगह जैसी उसके पास थी, प्रदान की। चूल्हे के पास आसन लगा। आज कुछ बुखार हो आया था। इसलिए हमारी इच्छा तो पड़ रहने की थी, तो भी उसके लिए काफ़ी इन्तिज़ार करना पड़ा। घरवालों को तीन सेर चावल और काफ़ी चाय देकर हमने अपनी उदारता प्रकट की। वस्तुतः तो अब इन चीज़ों की दुष्प्राप्यता और आव-

श्यकता कम होती जा रही थी। इसलिए हम अपने बोझे को हलका करना चाहते थे।

५ नवम्बर को जब हम चलने को तैयार हुए तब हमें ञे-नम् (कुत्ती) के लिए नये तीन घोड़े मिले। साथियों ने गाँववालों से ऐसा इन्तिज़ाम कर लिया था। उसी दिन ञे-नम् पहुँच जाने की लालसा में बिना जल-पान के ही चल पड़े। पानी की धारें जमी हुई थीं, जिन पर चलने से घोड़े कितनी बार इनकार कर देते थे। वस्तुतः बर्फ़ जमे पानी पर चलना शीशे पर चलने की भाँति ही ख़तरनाक है। कहीं कहीं तो हमारे साथ जानेवाले को धूल बटोर कर वर्फ़ पर बिखेरना पड़ा। सर्दी की इस विशेषता के अतिरिक्त रास्ता वही था जिसे पाँच वर्ष पहले हमने पार किया था। नदी के बायें रास्ते भर तो कोई वैसी बात न हुई। हम साथी को छोड़कर घोड़ों को जल्दी हाँकते आगे बढ़ आये थे। किन्तु जहाँ रास्ता नदी पार हो दाहने से चला, कठिनाई बढ़नी शुरू हुई। यहाँ के चार पाँच मील रास्ते को पिछली यात्रा में हमने नहीं काटा था। ञे-नम् तक के अन्तिम पाँच मील को यद्यपि पिछली बार भी मैंने पीठ पर बोझ लादे पार किया था, किन्तु यात्रा करने के वर्षों बाद वर्णन लिखते समय उस कठिनाई को भूल गया था। अब की बार दो-तीन जगह उतरते वक़्त तो रोंगटे खड़े हो गये। एक जगह की उतराई के बारे में तो मुझे डर होने लगा कि घोड़ा पुस्तकों को लादे इस रास्ते से

कैसे उतर सकेगा। और आख़िरी तीन मील तो हमें घोड़े से बिलकुल उतर जाना पड़ा। सारी परेशानी भूल गई, जब हम पहाड़ की बाँही पार हो दूसरी ओर आये और ञे-नम् हमें सामने दिखाई पड़ा। कहाँ, पिछली यात्रा में—"कहाँ" पूछ देने पर तालू सूखने लगता था, और कहाँ आज निधड़क अपने को भारतीय बताया जारहा था।

चार बजे ञे-नम् में पहुँचे। ने-बु-तङ् के चो-ला के लिए तिङ्-रि से चिट्ठी लाये थे, किन्तु उनका दिया स्थान प्रतिकूल पड़ रहा था। पूछने पर ल्हासा के किसी व्यापारी की दूकान भी यहाँ न मिली। अन्त में पाटन (नेपाल) के साहु जोगमान् से भेंट हुई, और उन्होंने अपनी एक खाली दूकान का ऊपरी कोठा हमें प्रदान किया। दूसरी चिन्ता थी हमें ल्हासा से लाये छु-सिन्-स्या के पिस्तौल को जिम्मे लगाने की पिस्तौल तिब्बत की यात्रा में आवश्यक चीज़ है, इसलिए धर्मवर्धन उसे यहाँ तक लाये थे किन्तु अब वह गोर्खासीमा में जा नहीं सकता था। जोगमान साहु ने उसकी भी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली और उस रात हम खूब आनन्द से पैर पसार कर सो रहे।

(२)

बुख़ार पीछा नहीं छोड़ रहा था, इसलिए हमें जल्दी पड़ रही थी। ६ नवम्बर को सवेरे उठे। देखा, सब जगह छै अंगुल मोटी बर्फ़ की चादर बिछ गई है। सवेरे भी बर्फ़ पड़ ही रही थी। उस

दिन दिन भर यही हालत रही । हम चाहते थे कि एक दिन रहकर अपने सब कपड़ों को धुलवा लें। लेकिन अब उसकी सम्भावना न थी। स-क्य से मिली तेरह मूर्तियाँ (६ लकड़ी की, ७ पीतल की ) और एक तालपत्र पोथी के बारे में दिक्कत यह थीं कि नेपाल-सरकार ने देश से बाहर (विशेषकर भारत की ओर) मूर्ति, पुस्तक आदि ले जाना निषिद्ध कर दिया था। इसलिए बिना पहिले से प्रबन्ध किये इन चीज़ों को नेपाल ले जाने पर नीचे जाते वक्त वह ,नेपाल की नहीं है, इसका क्या प्रमाण होगा। इसीलिए हम चाहते थे कि कुत्ती के नेपाली प्रतिनिधि (डीठा) को दिखा कर एक पत्र ले लें। डीठा सज्जन है। उन्होंने चीजें देख लीं, किन्तु चिट्ठी के बारे में कहा कि हम भन्सार ( कस्टम्-विभाग के मुख्य कार्यालय ) को चिट्ठी लिख देंगे। नेपाल में लोगों को हर बात में बहुत सावधानी रखनी पड़ती है। इसलिए बेचारों को वैसा करना उचित ही था।

उस दिन दीवाली थी। दिन भर हमने ज्वर के कारण उपवास किया था। शाम को साहु जोगमान का बार बार आग्रह घर में आकर खाने के लिए देखकर भी हम न समझे कि आज कोई विशेष दिन है। बाहर निकल कर देखा तो जगह जगह नेपालियों के घरों पर बहुत से दीपक जल रहे थे। भोजन करने की इच्छा तो न थी, किन्तु अब तो कल से पैदल चलना था, इसलिए जैसे हो, दो कौर भीतर रखने में ही कुशल था। भोजन

में कई तरह के मांस और तरकारियाँ थीं, जिन्हें चूरे के साथ खाना था।

रात को यह सोचकर बहुत सन्तोष हो रहा था कि कल यहाँ से प्रस्थान करेंगे। तीन बोझा ढोनेवालों को नेपाल तक के लिए तेरह तेरह मुहर (५ रुपये से कुछ अधिक) पर ठीक किया।

७ को सवेरे आकर भारवाहकों ने सामान बाँध लिया। कहा, हम कुछ खा पीकर चलेंगे। उनके इस कहने पर विश्वासकर हम दोनों ग्यारह बजे चल पड़े। जब तक हम पहाड़ की मोड़ से घूम कर दूसरी ओर नहीं आये तब तक हमारे चारो ओर बर्फ़ ही बर्फ़ थी। बादल था, किन्तु नीचे जाने के कारण हमें बर्फ़ पड़ने का उतना डर नहीं था। अपनी पहली यात्रा में हम इसी रास्ते से गुज़रे थे, तो भी यात्रा को वर्ष भर बाद लिखने से वे कठिनाइयाँ मन से दूर हो गई थीं। अब की यात्रा की स्मृति ताज़ी रहने के साथ लिखने से इसमें कुछ अतिशयोक्ति-सी मालूम होगी, किन्तु है वह बिलकुल सच। हमें आज छु-कम् (या छक्-सम्) पहुँचना था। सबसे कठिन रास्ता छक्-सम् से नीचे डाम् तक है। उसके बाद आज का रास्ता, और नंबर डाम् से सीमावाले पुल तक के रास्ते का है। उतराई कितनी ही जगह बहुत मुश्किल थी। इधर बीती बरसात के पानी ने भी कितनी ही जगह रास्ते को बहा दिया था। बीच में एक-आध बार बनारसी रामदाने जैसी बर्फ़ भी पड़ी। ढाई बजे हम

छक्-सम् पहुँच गये। यहाँ गर्म पानी के सोते में स्नान करना था। दो घंटा इन्तिज़ार करने पर देखा, भारवाहकों का कहीं पता नहीं। अन्त में बिना साबुन के ही जाकर देर तक स्नान किया। ढाई महीने की जमी मैल के उतर जाने से चित्त का प्रसन्न होना सर्वथा स्वाभाविक था।

शाम हो रही थी, लेकिन आदमियों के आने का कोई पता नहीं। दिल विश्वास करने को नहीं मानता था कि हमारे ओढ़ने-बिछौने को लिये वे लोग आज नहीं आयेंगे। सूर्यास्त हो गया। अँधेरा हो चला। अब विश्वास हो गया, आज नहीं आयेंगे। ज़रा ज़रा-सी गल्ती के लिए भोटवासियों को कोसना और बात है, किन्तु ऐसे दोष और जगह भी पाये जाते हैं। अपरिचित स्थान में जाने पर भारत में भी ऐसे बेपरवा आदमी मिल सकते हैं। प्रश्न था, हम लोग देह पर के कपड़ों को ही लेकर चले आये थे, अब रात की सर्दी का क्या इन्तिज़ाम हो। संयोग से हमारे निवास में एक और आदमी ठहरा था, जो ञ-नम् के एक साहु का गद्दा-तकिया-रज़ाई सब लिये जा रहा था। हमने जब घरवाले से रात की धूनी के लिए लकड़ी माँगी तब उस आदमी ने अपने साहु के बिस्तरे के देने का प्रस्ताव किया।

धर्मवर्धन को घरवाले ने कुछ कपड़े दे दिये। इस प्रकार रात भर ठिठुरने से जान बची। साथ ही यह भी शिक्षा मिली कि आदमियों को चलाकर स्थान छोड़ना चाहिए।

आज आठ नवम्बर था। सोचने लगा, आदमी दस बजे तो ज़रूर पहुँच जायेंगे। शायद वे रास्ते में ठहर गये होंगे। दोपहर तक प्रतीक्षा करते रहे। अब तक ञे-नम् से चले कितने ही आदमी पहुँच गये। मालूम हुआ, उन्होंने हमारे आदमियों को रास्ते में कहीं नहीं देखा। डरने लगे, कहीं आज भी न आवें। खाने-पाने की चीज़ें भी हमारे पास न थीं। हम घरवाले से कुछ चीज़ें उधार लेकर खा रहे थे। ओढ़ने-बिछौने की समस्या कल जैसी ही थी। अन्त में धर्मवर्धन ञे-नम् की ओर जाने को तैयार हुए। बारह बजे वे उधर गये, और हम एक चट्टान पर बैठ उस मार्ग-द्वार की ओर देखने लगे, जो ऊपर की ओर रास्ते पर बना था। आज भी गर्म पानी में डट कर स्नान हुआ था। ३ बजे दिन को बिस्तरा देनेवाला आदमी सबेरे ञे-नम् जाकर लौट आया। उसने कहा—आदमी आज भी नहीं आयेंगे। निराश हो गये। किन्तु सूर्यास्त के साथ, देखा, लोग आ रहे हैं। धर्मवर्धन को ञे-नम् के पास तक जाना पड़ा।

११ नवम्बर को तैयारी करते करते १० बज गये। आज आदमियों के चल देने ही पर चले। दूध का जला छाछ को भी फूँक कर पीता है। छक-सम् बस्ती के आँख की आड़ में होते ही रास्ते की कठिनाई मालूम होने लगी। वैसे तो ञे-नम् से ४-५ मील उतरते ही वृक्ष मिलने लगे।

---

# पंचम खण्ड

## नैपाल की ओर

छुक्-सम के आस-पास के पहाड़ जंगलों से भरे हैं और आज (९ नवम्बर) का जंगल और भी घना था। चारों ओर छोटे छोटे बाँसों की भरमार थी। शाम तक हमें उसी नदी के नौ पुल इधर से उधर पार करने पड़े। पिछली यात्रा में जिस गाँव में एक रात ठहरे थे, वहाँ अब की पेट भर छाछ पी। पिछली बार डुक्-पा लामा ने जिस नये घर में जल-स्रोत निकल आने के लिए वरदान दिया था उसकी अब दो-ढाई हाथ की दीवारें ही बाक़ी रह गई थीं। घरवाले कहाँ गये, इसका पता नहीं।

जिस वक्त हम डाम् गाँव में पहुँचे, अभी घंटा भर दिन बाकी था। डाम् पहुँचने से तीन मील पूर्व ही देवदार कटिबंध समाप्त हो गया था। एक अच्छा घर टिकने को मिला। पता लगा, हमारे पुराने परिचित अ-शङ् ङ्-वङ् सब छोड़-छाड़ अब के-रोङ् में ज्ञान-ध्यान के लिए बैठ गये हैं।

१० नवम्बर को फिर आदमियों ने देर करके वही समय कर दिया और दस बजे चले। अपने पूर्व-परिचित जंजीरों के पुल को पार किया। धर्मवर्धन हमसे भी अधिक डर रहे थे। आगे सीमावाले पुल तक रास्ता कई जगह बुरी तरह बिगड़ा
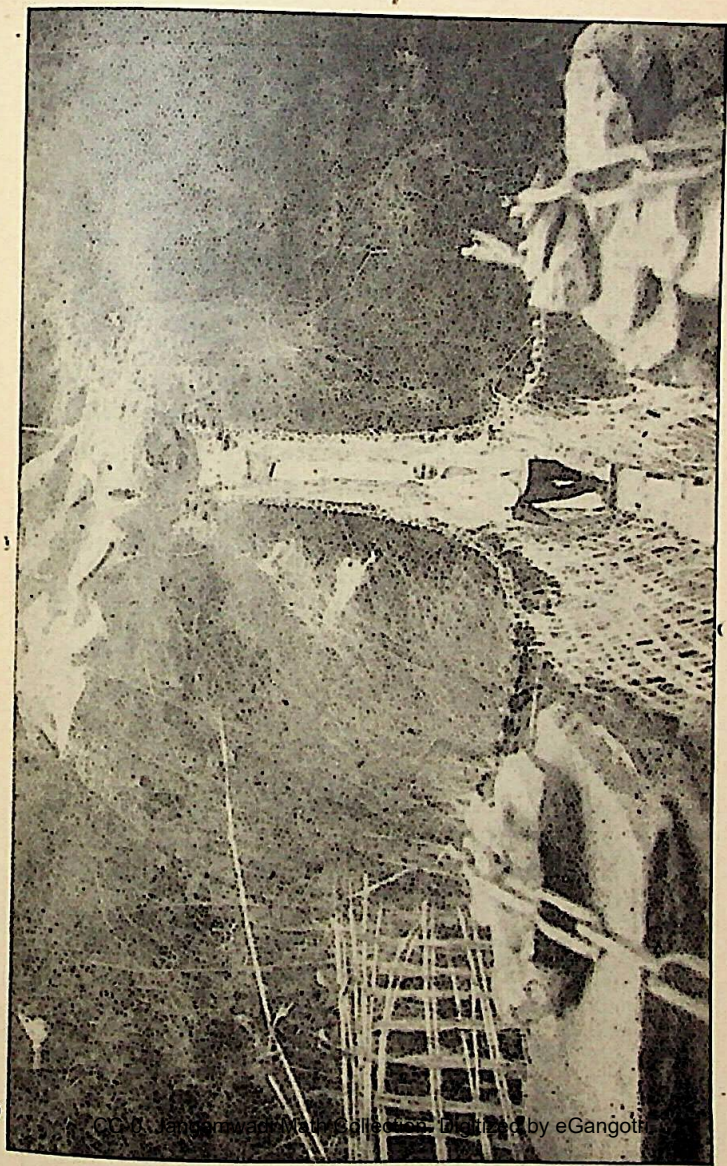
डाङ—झूलेवाला पुल (पृष्ठ १४०)

चौतारा—नेपाली घर (पृष्ठ १४५)
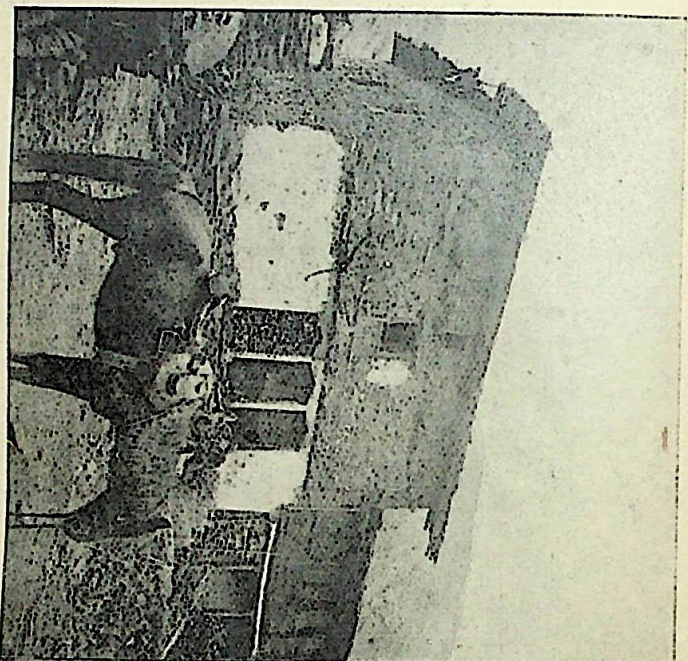
छोक्-समूका द्वार (पृष्ठ १३७)
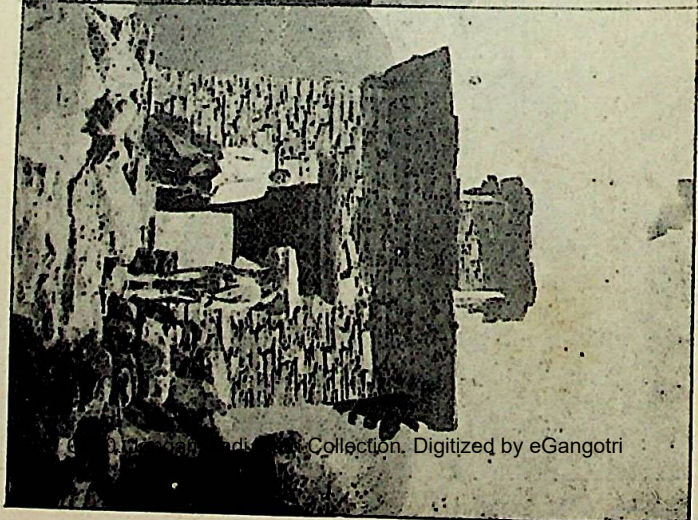
हुआ था। पुल भी पहली जगह से हट कर बना था। पार होते ही हम नैपाली सीमा में पहुँच गये। इधर का रास्ता अच्छा है। १९२९-३० ईसवी में नैपाल-भोट की जो तनातनी हुई थी उसका एक फल यह भी हुआ कि यह सड़क बन गई। हमने सोचा, जल्दी जल्दी चलें आगे फ़ौजी चौकी पर पहुँच जायँ, जिसमें आदमियों के आने तक नाम-गाँव लिखवाकर छुट्टी पा लें। हम वहाँ १२ बजे पहुँचे। प्रधान अफ़सर नैपाल गये हुए थे। दो छोटे अफ़सर भी मौजूद न थे। सिर्फ़ एक बूढ़े सूबेदार थे, जो 'मधेस' के आदमी को छोड़ने में डरते थे। उन्होंने दो बजे तक हमें वहीं बैठा रक्खा। जब हमने खाने-पीने की आवश्यकता बतलाई तब कहा—ऊपरवाले बग़ल के गाँव में चाय-पानी कीजिए। यदि हमारा साथी अफ़सर जिसको आज यहाँ पहुँचना ज़रूरी है, आ गया तो उसकी सलाह से जाने देंगे। चाय-पानी और दो घंटे के विश्राम के बाद आदमी भेजा। मालूम हुआ, उक्त अफ़सर आ गया है। वहीदार (यही उस अफ़सर का पद था) अधिक संस्कृत और मधुर स्वभाव के मिले। उन्होंने हमारे दोनों सन्दूक खुलवा कर देखे तो, किन्तु और दिक़्क़त नहीं पैदा की। छुट्टी पाते ही हम तातपानी के लिए चल दिये, जो २-३ मील ही नीचे था। यहीं राज्य का चुंगीघर है। बक्सों के खोलने का अत्यधिक आग्रह तो नहीं था, किन्तु हम अपनी मूर्तियों को दिखला देना चाहते थे। एक अर्ध नेवार सज्जन

लक्-पा के घर स्थान मिला। हमने पूछा—क्या आप नेवार हैं? उत्तर मिला—हाँ, खचरा नेवार। आसन ठीक-ठाक कर लेने पर गर्म पानी के चश्मे में आज साबुन के साथ स्नान हुआ।

११ नवम्बर को चलने से पूर्व हमने अपने आदमियों के अगुआ सिंहमान से कह दिया था—नीचे के रास्ते चलना है, ऊपर के रास्ते में चढ़ाई कठिन होने से हमें बहुत तकलीफ़ होगी। कुछ आनाकानी के साथ उसने बात स्वीकार कर ली और हमें विश्वास हो गया, वह दूसरी बात न करेगा। एक जगह देखा, भरवाहक बड़े रास्ते को छोड़ नीचे के छोटे रास्ते को पकड़ रहे हैं। थोड़ा उतरकर हम जंजीर के झूले के पास पहुँचे। अब मालूम हुआ, हमारे तिब्बती साथी—धर्मवर्धन बड़े रास्ते पर बढ़े जा रहे हैं। साथियों ने आगे बढ़कर सीटी बजाई। एक बटोही से भी उन्हें लौटाने के लिए कहा। हमें इसके लिए एक घंटा वहीं ठहरना पड़ा तब दो-तीन मील का चक्कर काटकर वे हमारे पास पहुँचे। झूला पार हुए। धीरे धीरे ऊपर की ओर चलने लगे। मालूम हुआ, हम तो बित्ता, सवा बित्ता की पगडंडी पर चल रहे हैं। कुछ और चलने पर चढ़ाई कठिन हो गई। कहीं कहीं बाईं ओर पगडंडी के नीचे ही चालीस चालीस, पचास पचास हाथ नीचा खड्ड था। अब तो चढ़ाई से जितना शरीर को कष्ट न था, उतना दुःख मन को अधिक सावधानी रखने के कारण हो रहा था। सिंहमान को बहुत फटकारा, किन्तु अब दूसरा चारा क्या

था। उतार और एक नाले को पार कर चढ़ाई अत्यन्त कठिन मिली। आख़िर सूर्यास्त तक हम छङ्-चिङ् के डाँड़े पर पहुंच गये। एक घर के बाहरी बरामदे में जगह मिली।

१२ नवम्बर को नौ बजे रवाना हुए। रास्ता उतार का था, और कितने ही स्थानों पर बहुत कठिन था। बहुत देर तक उतरने पर एक छोटे-से पुल से एक छोटी नदी पार की। फिर चढ़ाई शुरू हुई। रास्ते पर एक सिसकती माणी मिली। हमने पीपल के नीचे विश्राम किया। फिर गोम्-थङ् गाँव में पहुँचे। यहीं सदर रास्ता आ मिलता है। आज सवेरे कुछ खाया न था। ढूँढ़-ढाँढ़-कर दूध लाया गया, किन्तु आग पर रखते ही फट गया। हताश हो चल दिये। अब हम आगे चले—इस ख़याल से कि आगे कहीं सुख-यात्रा हो। रास्ता अच्छा सुसंस्कृत था। खेतों और गाँवों से होते हुए हम आगे बढ़ रहे थे। अब हम भैंसों के देश में पहुंच गये थे, इसलिए यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हम काफ़ी गर्मी महसूस कर रहे थे। दो-ढाई घंटे की चढ़ाई के बाद हम जोत् पर पहुँचे। यहाँ दो-तीन घर हैं। फिर उतरने लगे। कल तक हम अपने पुराने रास्ते पर आये थे, किन्तु आज रास्ता नया था। हम समझ रहे थे, आगे कहीं दूकान मिलेगी। भूख ज़ोर की लग रही थी। किन्तु ४॥ बजे थङ्ला-कोट में जाकर दो टुटपुँजिया दूकानें मिलीं। बड़े यत्न के बाद थोड़ी मिश्री और डंडे का पीटा चूरा प्राप्त हुआ। देर होने पर डर लगने

लगा कहीं आज भी साथी पीछे ही न रह जायँ, किन्तु आज धर्मवर्धन उनके साथ थे। रात को यहीं पासल ( पण्यशाला ) में ठहरे।

१३ नवम्बर को हमारे साथी सूर्योदय के साथ चलने के लिए तैयार हो गये। घर छोड़ते ही हम दोनों आगे हो लिए। रास्ता विशेष उतार का था, किन्तु सड़क अच्छी होने से कोई तकलीफ़ नहीं थी। रास्ते में एक चश्मे पर हाथ-मुँह धोये। मालूम हुआ, जलबीरा का बाज़ार क़रीव है। बाज़ार में १४-१५ दूकानें थीं और कपड़े और दूसरी बहुत-सी चीजें बिकती थीं। बहुत खोजने पर भी हमें कोई फल नहीं मिल सका। कितनी ही देर की इन्तजारी के वाद साथी आये। मालूम हुआ, उनके परिचित दूकानदार की दूकान कुछ और नीचे चलकर है। एक लकड़ी का पुल पार कर नये ढंग के बने झूले के पुल से नदी के पार हुए परिचित दूकानदार के यहाँ अधिक अनुकूलता मिली। इधर कई दिन से हमने मांस धर्मवर्धन के लिए छोड़ रक्खा था। आज यहाँ आग की भूनी सूखी मछलियाँ दिखलाई पड़ीं। सात्विक भोजन खाये कई दिन हो गये थे। दो रुपये की खरीद कर रास्ते के लिए रख ली गईं। साथी भात वनाने लगे, और हमने फलों की खोज शुरू की। कुछ पके केले मिले, और कुछ मिठाई भी प्राप्त हुई।

भोजनोपरान्त बारह बजे हम रवाना हुए। रास्ता चढ़ाई का

था। पीछे थोड़ा-सा उतार उतरकर फिर शाम तक चढ़ाई ही चढ़ाई रही, रास्ते में थकावट तो मालूम हुई, किन्तु शाम को चौतरा पहुंचने पर वह बस भूल गई। चौतरा पहाड़ी डाँड़े पर बसा हुआ है। बड़े हाकिम का निवासस्थान तथा एक जिले का हेडकार्टर होने से बस्ती अच्छी है। आरम्भ में सैनिक महत्त्व के ही कारण वह ऊँची पहाड़ी रीढ़ आबाद की गई होगी। बड़े हाकिम की कोठी बस्ती से कुछ हट कर थी। पिछले भूकम्प से यहाँ के घरों को बहुत अधिक क्षति नहीं हुई है। थोड़ी-सी पूछ-ताछ के बाद रहने को स्थान मिल गया। लोग धर्मवर्धन के साथ हमें भी भोटिया बना रहे थे, यद्यपि सिर से पैर तक कोई भोटिया चीज़ हमारे पास नहीं थी।

१४ तारीख़ को हमारे साथी अपने घर पहुँचनेवाले थे, इसलिए हम उन्हें छोड़ आगे बढ़े। शुरू से ही उतार शुरू हो गया। कुछ दूर चलने के बाद हम धर्मवर्धन से भी आगे बढ़ गये। बहुत दूर निकलने पर भय लगने लगा, कहीं धर्म-वर्धन दूसरा रास्ता न पकड़ लें। भाषा न जानने से फिर बहुत मुश्किल में पड़ जाना होगा। नीचे जाकर १॥ घंटे की प्रतीक्षा के बाद वे आये। आदमियों के लिए थोड़ा और इन्तज़ार किया। किन्तु उनका अभी पता तक न था। सोचा, उतार ख़त्म कर ठहरेंगे। नीचे पहुँच एक पीपल के नीचे हाथ का तकिया बना लेट गये। शरीर में ज्वर था। संभवतः नींद भी आ गई थी।

बड़ी देर के बाद साथी आये। कच्चा पुल पार हो साथियों ने धर्मवर्धन के लिए कुछ खाने को पकाया। हमारी बिलकुल ही इच्छा न थी। कुछ दूर चढ़कर थोड़ी देर विश्राम कर हम सि-पा गाँव में पहुँचे। साथियों के घर कुछ हट हटकर थे, इसलिए वे अपने एक मित्र नेवार के घर में ले गये। पास में पपीते के कितने ही वृक्ष थे, जिन पर फल भी लगे थे। यहाँ के लोग पपीते को मेवा कहते हैं। भारत में भी कहीं कहीं रड-मेवा कहा जाता है। कहने पर दो फल लाये गये, जो पक्वप्राय थे। एक स्त्री ने कहा—हाँ, यह तो मेवा है, देवताओं के चढ़ाने के लिए। वस्तुतः देवभोग के खाने का हमें कोई अधिकार न था। कहने पर दूध भी मिल गया, और इस प्रकार दूध-भात का भोजन हुआ।

१५ नवम्बर को भोजन करके नौ बजे ही चले। सड़क ऊपर से जा रही थी, जिसके लिए हमें खड़ी चढ़ाई चढ़नी पड़ी। धर्मवर्धन को साथियों के साथ आने के लिए कह कर हम आगे बढ़े। सि-पा में राज्य की ओर से सहायता प्राप्त एक संस्कृत पाठशाला है। यहाँ कुछ घर ब्राह्मणों के भी हैं। तीन मील के क़रीब हमारा रास्ता मीठी चढ़ाई का था, फिर उतार शुरू हुआ। ११ बजे हम इन्द्रावती (कोसी की शाखा) के तट पर पहुँचे। जब दो घंटे के इन्तिज़ार के बाद भी साथी न आये तब पीपल की छाँह छोड़ पानी के तट पर पड़ी मल्लाह की झोपड़ी में

पहुँचे। नदी का पाट भारी था और पानी भी अधिक था। पुल बहुद्रव्यसाध्य होने से यहाँ खोखले वृक्ष के तने की दो नावें रहती हैं। आध घंटा और इन्तिज़ार करने पर साथी आये। और नैपाली साढ़े पाँच आना देकर हम नदी के पार हुए। इस पार दूर तक धान के खेत थे, जिनकी कटाई हो रही थी। चौतरा के कुछ ऊपर से ही धान अच्छी जाति के बोये जाते हैं। थोड़ी चढ़ाई चढ़कर घंटे भर विश्राम किया। फिर ऊपर चढ़ने लगे। रास्ते में कितने ही गाँव मिले, जिनमें कुछ भूकम्प-ध्वस्त घर दिखाई पड़े। सूर्यास्त के बाद हम देवपुर की एक दूकान में पहुँचे, जिसका मालिक हमारे साथियों का परिचित था। यहीं पास की पान्थशाला में आज विश्राम करने की ठहरी।

१६ नवम्बर को हमारे ज़ोर देने पर बिना खाये ही कूच बोला गया। हमने समझा था, कल ही चढ़ाई समाप्त हो गई। किन्तु चढ़ाई तो वस्तुतः आज थी। यदि सड़क बनी न होती तो यह रास्ता बहुत कठिन होता। यह नाल् दोम् (चीसपानी) का डाँड़ा बहुत ऊँचा है। सात हज़ार फुट से क्या कम होगा! साथियों को छोड़ हम आगे बढ़ गये। डाँड़ा पार हो दो घंटे साथियों के इन्तिज़ार में बैठना पड़ा। यहाँ से दो-तीन मील ऊपर नैपाल-शासक-वंश के किसी व्यक्ति का ग्रीष्म-निवास दिखाई पड़ रहा था।

साथियों के आने पर हम उतरने लगे। साखु अभी ३-४ मील था, किन्तु साथियों ने खाना बनाना तय किया। हम दोनों आगे

बढ़ चले, बारह बजे के बाद हम साखू पहुँचे। यह एक अच्छा सा क़स्बा है। पिछले भूकम्प से इसे भी बहुत क्षति हुई है। क़स्बा देखने के बाद हमने एक हलवाई की दूकान पर नैपाली अठारह आने की पूड़ी-मिठाई खाई। साखू से थोड़ी ही दूर नीचे जाने पर मोटर की सड़क आगई। धर्मवर्धन मोटर देखकर बहुत खुश हुए। यह सड़क नई है, आवश्यक स्थानों पर बड़े पुल भी बने हुए हैं, किन्तु खेतों में इस पार से उस पार पानी ले जाने के लिए पुख्ता पुलिया कहीं नहीं है, इसलिए सड़क कितनी ही जगह काट दी गई जिससे रास्ता ख़राब हो गया है। सूर्यास्त के समय हम दोनों बौधा पहुँचे। काठमांडू के लिए अभी दो-तीन मील जाना था, साथी भी नहीं हुआ। चीनी लामा पुण्यवज्र ने देखते ही पहचान लिया।

१७ नवम्बर को सबेरे ही काठमांडू को चले। बौधा के पुराने स्तूप को भूकम्प से कोई क्षति नहीं हुई थी और आस-पास के बहुत-से मकान भी बच गये थे। जहाँ विहार के भूकम्प-ध्वस्त शहरों में नये और लकड़ी के ढाँचेवाले मकानों को छोड़कर बाक़ी को प्रायः एक-सी हानि पहुँची थी, वहाँ नैपाल पहुँचे थे, इसलिए बौधा में ही आज रहने का निश्चय में कहीं कहीं पुराने मकान अक्षुण्ण रह गये हैं, और कहीं मुहल्ले का मुहल्ला साफ़ हो गया है। इसका कारण शायद नीचे की भूमि की बनावट हो। भूकम्प हुए अब ग्यारह महीने होने

को आये, किन्तु अब भी बहुत-से लोग अपने मकानों को नहीं बना सके। कितनों ने सिर्फ रहने भर का बन्दोबस्त कर लिया है। सरकार ने पुनर्निर्माण के लिए अलग एक विभाग खोल दिया है। राजपरिवार के चन्दे से सहायता की मद में चौदह-पन्द्रह लाख रुपये जमा हो गये थे। लेकिन देखते हैं, नये मकानों के बनाने में लोगों ने भूकम्प से कोई सबक़ नहीं सीखा। उन्होंने देखा है, लकड़ी का ढाँचा रखकर बनाये मकान अधिक मजबूत साबित हुए हैं, तो भी केवल ईंटों के मकान धड़ाधड़ बनाये जा रहे हैं। मेहराब का भी पहले की तरह खुलकर इस्तेमाल हो रहा है। सोच रहे होंगे, अब तो सौ वर्ष बाद न आयेगा!

श्रीधर्ममान साहु (छु-सिं-स्या के स्वामी) का मकान काठमांडू के भीतर ४७ तन्-ला-छी मुहल्ले में है। वे प्रसिद्ध पुरुष हैं, इसलिए उनके घर के मिलने में दिक्क़त न हुई। पहले उनके जिस घर में हम तीन दिन रह चुके थे, वह अब भूकम्प-ध्वस्त हो गया है। नया मकान बच गया है, जिसके पाँचवें तल्ले पर हमारा आसन लगा। साहु के दो पुत्र श्री त्रिरत्नमान् और श्री ज्ञानमान् घर पर ही थे। इधर कुछ दिनों से भाषा न समझने के कारण धर्मवर्धन को मूक-सा ही रहना पड़ता था। लेकिन इस घर में उन्हें साहु, उनके दो पुत्र और उनके भांजे—चार भोट-भाषा बोलनेवाले मिल गये। घर में घुसते ही सिर में

तड़ाक से ठोकर लगी। खोपड़ी बच गई, किन्तु नैपाल में नत सिर रहने की शिक्षा मिल गई। नैपाल के लोग बहुत लम्बे तो होते नहीं, फिर वे क्यों ऊँची छतवाले मकान बनायें? हम लोग शिकायत करेंगे—नैपालियों को ख़याल रखना चाहिए, दुनियाँ में सभी लोग उन्हीं की तरह साढ़े तीन ही हाथ के नहीं होते। किन्तु इसका मतलब है, इस पाँच तल्ले के मकान को घटाकर तीन तल्ले का बनाना। ख़र्च तो बराबर एक-सा ही होगा।

स्वागत-सत्कार, खाद्य-भोज के बाद मित्रों को कुछ चिट्ठियाँ लिखीं। दो-चार पुराने अख़बार पढ़े। हमने जिस प्रमाणवार्तिक के भाष्य वार्तिकालङ्कार के दो परिच्छेदों को सन्क्य मठ में देखा था उसका मूल नैपाल के महा विद्वान् राजगुरू श्रीहेमराज शर्मा को मिल गया है, यह हमें पहले ही मालूम था, और हमारे नैपाल के मार्ग से लौटने का एक कारण वस्तुतः यह भी था। राजगुरु से पत्र-व्यवहार पहले से भी था। दूसरे दिन भेंट करने के लिए एक पत्र लिख भेजा। तुरन्त ही उत्तर आया—

"भारतीभवनात्
कार्तिकशुक्लैकादश्याम्

अयि प्रियमहाभाग।

मया भवत्प्रेषितं पत्रमवाप्तम्। भवदागमनवार्तां श्रुत्वा प्रमोदम-

नेपाल-राजगुरु पण्डित हेमराज शर्मा (पृष्ठ १५०)

नुभवति मे चेतः । श्वः प्रभातेऽतिथिसत्काराय सज्जो भविष्यति प्रेयान् चिरपरिचितो हेमराजः"

१-१२-३४

१८ नवम्बर को सबसे पहले राजगुरु से ही भेंट करने का निश्चय किया। इधर-उधर की देखने की चीज़ों में तो दो-चार ही दिनों की आवश्यकता थी, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता था कि प्रमाणवार्तिक के लिए कितना समय देना होगा। राजगुरु संस्कृत के गंभीर विद्वान् हैं। उन्होंने व्याकरण, साहित्य, न्याय, मीमांसा सभी शास्त्रों को विधिवत् अध्ययन किया है। बड़े ही विद्याव्यसनी हैं। ये सब बातें तो मुझे पहले से मालूम थीं, किन्तु इतने समीप से देखने से उनमें कितने ही और अनमोल गुण मालूम हुए। उनकी नम्रता और विनय का आप अन्दाज़ नहीं लगा सकते, जब तक समाज और राज्य में उनके स्थान को न जान जायँ। राजगुरु का वंश चिर काल से गोर्खा राजवंश का गुरु होता आया है। वंश में प्रधान गुरु (बड़े गुरु) के अधिकार पाने में अवशिष्ट व्यक्तियों में ज्येष्ठ होने का ध्यान रक्खा जाता है, उसी तरह जैसे कि तीन सरकार के पद के लिए। राजगुरु के पूज्य पिता पहले प्रधान गुरु थे। आज-कल उनके अति वृद्ध चचा हैं, लेकिन वंश में अधिक विद्वान् होने के कारण पहले से राजकुल के यही सलाहकार रहे हैं। राजगुरु ने यद्यपि बचपन से संस्कृत-भाषा का ही अध्ययन किया है और वंश-क्रम

से भी अनुमान यही हो सकता है कि उनके विचार आधुनिक प्रगति से बिलकुल शून्य होंगे। लेकिन बात ऐसी नहीं है। सभी प्रकार की विद्या के लिए उनमें अपार जिज्ञासा है। उनके पास अंगरेज़ी-हिन्दी के अनेक दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र आते हैं। संस्कृत के दुर्लभ हस्तलिखित ग्रंथों के अतिरिक्त छपे ग्रंथों का एक बृहत्संग्रह तो है ही, साथ ही अनेक विषयों पर हिन्दी और अँगरेज़ी के हज़ारों ग्रंथ आपने संग्रह किये हैं। उन्हें व्यावहारिक राजनीति का बहुत सूक्ष्म ज्ञान है, यह मुझे तब मालूम हुआ जब मैंने महायुद्ध के कारणों पर उनके १९१६ में लिखे एक अप्रकाशित निबंध को सुना। तिथि और मास दे देकर योरपीय शक्तियों के बलाबल की सुन्दर विवेचना करके उन्होंने उसे लिखा है। इन गुणों से उनका राजनैतिक प्रभाव भी अधिक होगा, यह स्पष्ट है।

पंडित जयचन्द्र विद्यालंकार ने एक जगह राजगुरु को सजीव विश्वकोश कहा है। वे हैं भी ऐसे ही। इस प्रकार के प्रभुत्व, विद्या और धन के होते उनसे इतनी नम्रता की आशा नहीं की जा सकती। एकान्त श्वेत कचयुक्त उनके सुनास गौर मुख पर लहकी हँसी की रेखा हर वक़्त खिंची रहती है। उनको देखते वक़्त किसी अपने पूर्वज तपोधन ऋषि की याद आये बिना नहीं रहती।

दूसरे दिन १८ नवम्बर को सवेरे एक साथी को ले कर हम

उनके स्थान पर पहुँचे। ड्योढ़ीदार ने ख़बर की, और तुरन्त हम भीतर ले जाये गये। देखा राजगुरु पोथियों के ढेर के बीच एक क़ालीन पर बैठे हुए हैं। स्वागत के अनन्तर चिरपरिचित जैसी बातें शुरू हुईं। हमने अपनी तिब्बत में देखी पुस्तकों का जिक्र किया। प्रमाणवार्तिक भाष्य के लिख लाये भाग को भी दिखलाया। वार्तिक के मूल की ताम्रपोथी उन्होंने रोम के आचार्य तूची को दे दी है, यह वे हमें पहले ही लिख चुके थे। हाँ, उसकी एक नक़ल मौजूद है। तो भी मूल प्रति या उसके फोटो की अत्यन्त आवश्यकता थी। खोजने पर फोटोग्राफर के पास निगेटिव मिल गये। देखने से मालूम हुआ ४१ पन्ने मिले हैं, जिनमें कुछ पर ही अंक हैं, इसलिए कहा नहीं जाता, कुल पन्ने कितने रहे होंगे। सबसे पहले तो ज़रूरत हुई पत्रों को क्रम से लगाने की। हमारे साथी धर्मवर्धन को भोट-भाषा में सारा ही प्रमाणवार्तिक कण्ठस्थ था। हम पत्र के आरम्भ के श्लोक का अर्थ बोलते थे और वे भोटपोथी में उसे निकाल कर रख देते थे। पहले ही दिन के काम से मालूम हो गया कि यह काम एक सप्ताह में नहीं होने का।

तब से पहली दिसम्बर तक—जब तक कि हम काठमांडू में रहे—बीच के दो-एक दिन छोड़कर हम बराबर इन्हीं पुस्तकों में व्यस्त रहे। हमारे पहुँचते ही गुरु जी और काम बन्द कर देते थे। रात के नौ नौ बज जाते थे, और हमारा काम जारी रहता था।

एक ओर वृद्ध शरीर, उस पर वातरोग, किन्तु चाहे ऊपर के मन से ही सही, जब हमारी ओर से विश्राम करने के लिए कहा जाता तब वहाँ सुनवाई कहाँ होती थी।

राजगुरु के परिवार के बारे में भी सुन लीजिए। पचास वर्ष की अवस्था तक आपको कोई सन्तान न थी। आपकी पहली पत्नी का देहान्त हो गया है। दूसरी पत्नी से आपको तीन सन्तानें हैं—दो पुत्र एक कन्या। ज्येष्ठ पुत्र की आयु आठ-नौ वर्ष की है। जब मैंने ज्येष्ठ पुत्र के आने पर उन्हें पिता से शुद्ध संस्कृत में निस्संकोच बातें करते देखा तब आश्चर्य का होना स्वाभाविक ही था। मालूम हुआ, पिता की भाँति उनकी माता भी संस्कृतज्ञ हैं। इस प्रकार सन्तान की मातृभाषा संस्कृत बन गई है। पुत्र जिस प्रकार का मेधावी है, उससे बहुत आशा हो सकती है मैंने इस भाव को जब प्रकट किया तब उत्तर मिला, "पुत्रादिच्छेत्पराजयम्"।

मैंने जो कुछ यहाँ राजगुरु के बारे में लिखा है वह न दरबारी मुसाहिबों की बात है, न पूरी है। बल्कि मुसाहिबी का खयाल तथा राजगुरु के संकोच का विचार मुझे खुलकर लिखने की आज्ञा नहीं देता। सच्चे और सादे विद्वानों को देखकर हृदय में अत्यधिक श्रद्धा हो जाना मेरे स्वभाव में है। योरप या भारत जहाँ कहीं भी ऐसे महापुरुष मुझे मिले, सभी जगह मेरा हृदय सम्मान के लिए उनके सामने झुक गया। राजगुरु हेमराज शर्मा

नेपाल ( पाटन )—बोध गया मन्दिर, भूकम्पध्वस्त
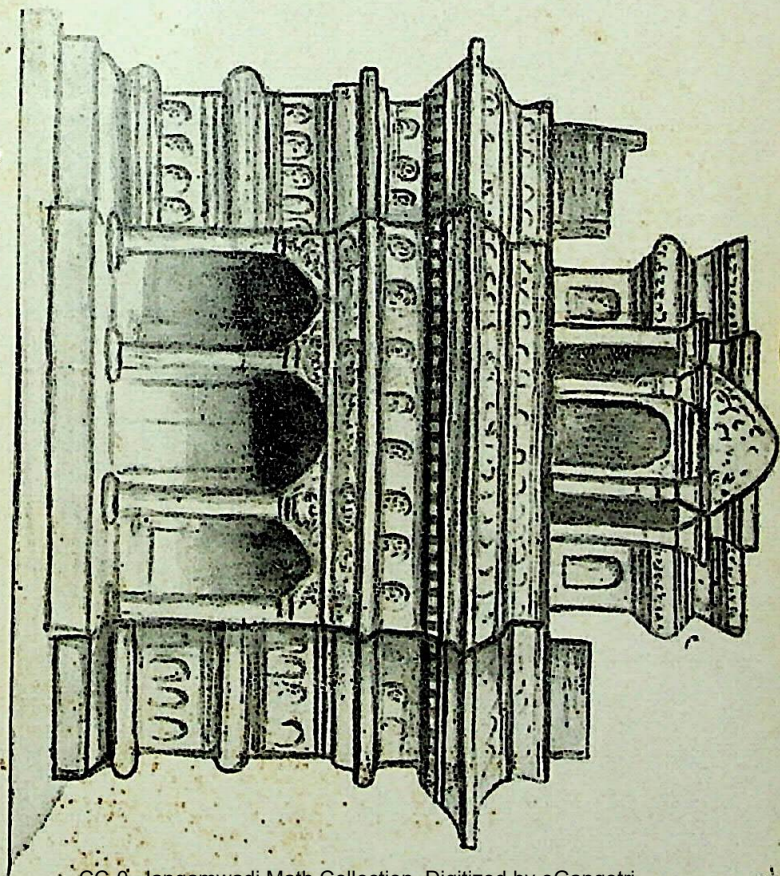
नैपाल के रत्न हैं। मैंने कहा—आपके ऐसा अद्भुत ज्ञानराशि का धनी हो, और नैपाल जैसी अनमोल संस्कृत-ग्रंथों की खानि हो, फिर भी यहाँ से कोई संस्कृत-ग्रन्थ-माला न निकले, यह बड़े खेद की बात है। नैपाल-महाराज का ध्यान इधर न जाना नैपाल की शोभा की बात नहीं है। भारत के सारे हिन्दू जिस नैपाल की ओर अपार श्रद्धा से देखें वह इस विषय में मैसूर और बड़ौदा ही नहीं, ट्रावन्कोर और काश्मीर की भी पंक्ति में न आ सके, यह कितने खेद की बात है।

पिछले भूकम्प ने नैपाल को बहुत हानि पहुंचाई है, यह पाठक अख़बारों में पढ़ चुके हैं। यद्यपि मकानों के बनवाने आदि में सरकार ने बड़ी सहायता की है (इस विभाग के अध्यक्ष भी हमारे राजगुरु ही हैं), तो भी शहर के शहर का इतने थोड़े समय में फिर से बना डालना आसान काम नहीं है। इसीलिए अभी कितनी ही जगह फटी-टूटी दीवारें और खँडहर पाये जाते हैं। जहाँ भूकम्प ने काठमांडू, पाटन और भातगाँव के राज-महलों को बहुत हानि पहुँचाई है, कितने ही ऐतिहासिक मंदिरों को ध्वस्त किया है, वहाँ उसने और कई क्रूर कर्म भी किये हैं। एक घटना राजगुरु खुद सुना रहे थे। पाटन में शहर के छोर पर एक बौद्ध-विहार है। नाम तो कुछ और है, किन्तु ग्यारहवीं शताब्दी में उसमें एक प्रकांड पंडित भिक्षु शुनयश्री रहते थे, इसीलिए उक्त विहार सुनयश्री-विहार के नाम

से भी परिचित है। इस मंदिर के ऊपरी तल के भनसार (भाण्ड-शाला) में सत्तर-पचहत्तर के क़रीब अतिपुरातन तालपत्र-ग्रन्थ थे। राजगुरु ने पहले कितनी ही बार उनको देखने की कोशिश की थी, किन्तु विहार-वाले घरबारी भिक्षु उस पवित्र निधि को दिखाने में धार्मिक बाधा पेश करते थे। पिछले भूकम्प में वह विहार एक-दम धराशायी हो गया। नैपाल के सभी पुराने विहारों में अब घरबारी भिक्षु या वज्राचार्यों के परिवार रहा करते हैं। विहार के गिर जाने पर लोगों ने सरकार की ओर से मिले चालिस-पचास आदमियों की सहायता से अपने घरों की चीज़ें निकाल लीं, किन्तु उस पंचायती मन्दिर की चीज़ें उसी में रहने दी गईं। भादों महीने में भूकम्प-सहायता के काम से एक दिन राजगुरु उधर से निकले। उन्हें सुनयश्री-विहार की याद हो आई। उन्होंने पूछा—"यहाँ तो एक विहार था, जिसमें बहुत-सी तालपत्र की पुस्तकें थीं।" "यह क्या गिरा पड़ा है?"

"और तालपत्र की पोथियाँ कहाँ हैं?"

"इसी में दबी पड़ी हैं?"

"गर्मी और सारी बरसात भर!!"

इन बातों को कहते वक्त मैं देख रहा था, राजगुरु के चेहरे पर अन्तर्वेदना की साफ़ छाप थी। उस दिन कैसी बीती होगी, इसके लिए कह रहे थे मैं अपने भीतर रो पड़ा। इन्हीं पुस्तकों के लिए दुर्गम हिमालय के फाँदने-वाले मुझ जैसे व्यक्ति की भी

ते-सा—शिका सपत्नीक (पृष्ठ १२८)
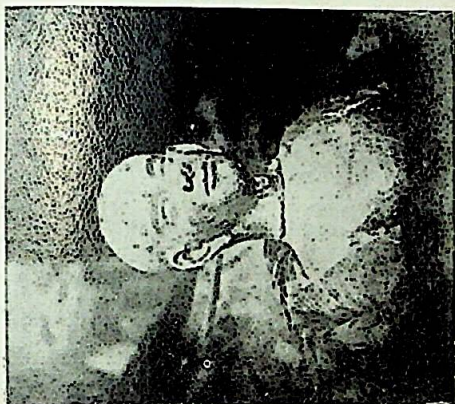
नेपाल (पाटन) - की मूर्ति, सुनयश्री
भूकंपध्वस्त ( पृष्ठ १५७ )
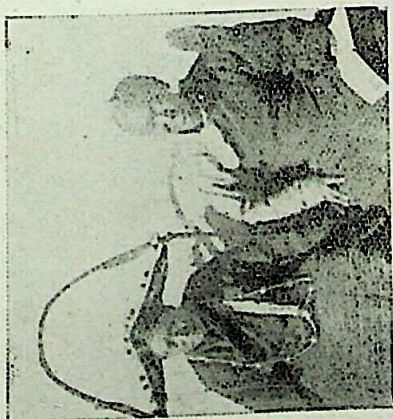
समवेदना रो पड़ी। वे बोले—फिर मैंने तुरन्त जहाँ-तहाँ से पचीस-तीस आदमी बुलवाये। निर्दिष्ट स्थान को खुदवाना शुरू किया। दो-तीन घंटे के भीतर ही मटके के चूर में पुस्तकें दिखाई पड़ीं। पहले ऊपर के लकड़ी के फट्टे दृष्टिगोचर हुए। काँपते हुए हाथ से उन्हें उठाया। फट्टों के भीतर हाथ डालने पर कीचड़ निकल आई! मेरे मन की अवस्था को क्या पूछ रहे हैं? दिल मसोस कर रह गया। लोगों को दो-चार भली-बुरी कहीं। देखा, तो उनकी संख्या डेढ़ सौ के क़रीब थी अर्थात् वहाँ जरूर सत्तर के क़रीब तालपोथियाँ रही होंगी।

नैपाल के सभी विहारों में ऐसे पंचायती मंदिर और भनसार हैं। न जाने कितनों के साथ ऐसी गुजरी होगी।

२३ नवम्बर को हम पाटन गये। सुनयश्री-विहार की समाधि देखी। मन्दिर के गिरने की जगह कितने ही खंडित अर्धखंडित काठ की सुन्दर मूर्तियाँ पड़ी थीं, जिन्होंने सारी बरसात यहीं आसमान के नीचे काटी थीं। कुछ मूर्तियाँ एक छोटे से खपड़ल के नीचे रक्खी गई है। इन्हीं में आचार्य सुनयश्री की मिट्टी का मूर्ति भी है। उसका ऊपर का ही धड़ बचा हुआ है। मूर्ति बहुत ही जर्जर-अवस्था में है। मैंने एक फोटो लिया, जिसे देखकर श्रद्धेय जायसवाल जी ने कहा—अद्‌भुत है। यदि यत्न किया जाय तो सुनयश्री की सुन्दर प्रतिमा सुरक्षित की

जा सकती है, किन्तु इसकी सम्भावना नहीं, हाँ यदि नैपाल-सरकार सुध ले तो दूसरी बात है।

भूकम्प से सब से अधिक क्षति भातगाँव को हुई है। दूसरा नंबर पाटन का है। उन सँकरी गलियों में गिरते मकानों के बीच आदमी क्या सोचता रहा होगा? अथवा वहाँ सोचने भर की फ़ुर्सत कहाँ रही होगी, सिवा उनके जिन्हें घायल होकर घुल घुल कर मरना या अंग-भंग होकर जीना बदा था।

नैपाल में अब की बार मैंने प्राचीन हिन्दी-ग्रंथों की तलाश की। राजगुरु के पास अपना भी प्राचीन ग्रन्थों का एक अच्छा संग्रह है उसमें दसवीं शताब्दी के सिद्ध तिल्लोपा का एक दोहा-कोश मिला। ग्रंथ खंडित है। सरकारी पुस्तकालय में भी दोहा-कोश सरहपा का है। यद्यपि वह बँगला अक्षरों में छप चुका है, तो भी हिन्दी-संस्करण के लिए हमें फिर आवश्यकता होगी, इसी लिये उसका भी फोटो ले लिया। इसके लिए शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर जनरल मृगेन्द्र शम्शेर एम० ए० ने बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक अनुज्ञा दे दी। आप राना-घराने के सर्वप्रथम एम० ए० हैं।

पुस्तकों के बारे में पूछ-ताछ करते वक्त मालूम हुआ था कि जेनरल केशर शम्सेर के पास भी पाँच सौ के क़रीब हस्त-लिखित ग्रंथ हैं। २८ नवम्बर को बारह बजे केशर-महल गये। दरबार अप-टु-डेट अंगरेज़ी ढंग का तथा सुन्दर उद्यान और हरे
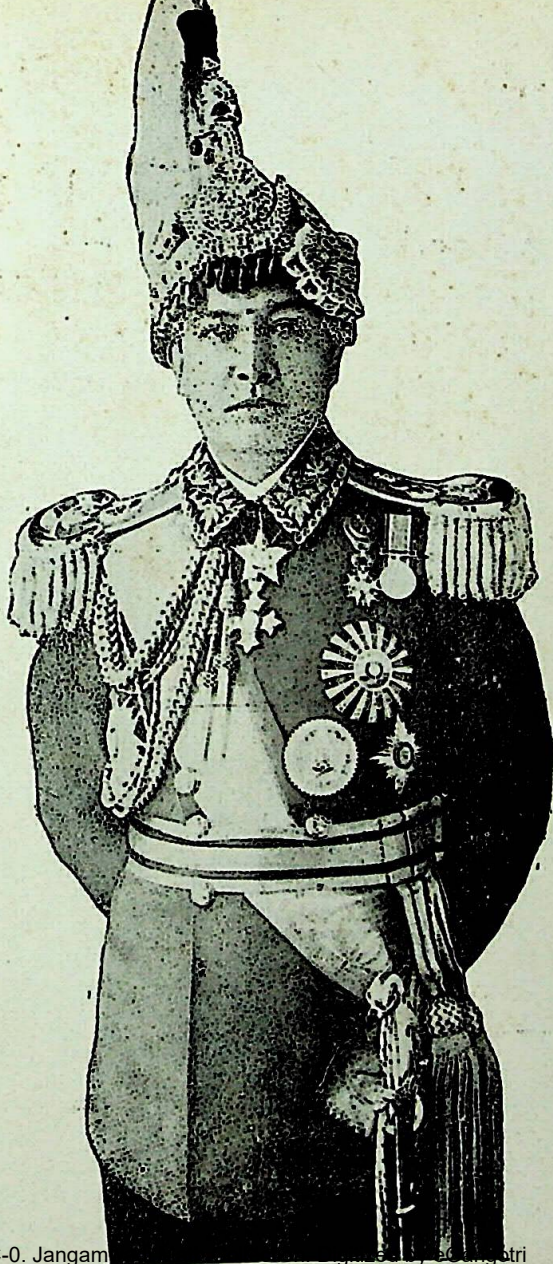
नेपाल—जैनरल केसर शम्सेर ( पृष्ठ १५८ )

मैदान से सजा है। हाल में जाकर बैठे। आशा थी, कोई हैटेड-सूटेड साहब आयेगा। देखा, सीढ़ी से एक पतली-दुबली मूर्ति घुटनों तक की नैपाली धोती, दुलाई; दो पैसही टोपी और फट-फटहा जूता पहने उतर रही है। आदमी ने आकर बतला दिया, नहीं तो सचमुच ही मैं पहचान न सकता। जेनरल केशर शम्सेर के दो रूप हैं, एक राजनैतिक, जिसकी योग्यता का प्रमाण तो यही है कि नैपाल-सरकार के परराष्ट्रसचिव हैं। और दूसरा यही जिसे मैंने देखा—भारतीय पुरातत्त्व, साहित्य, संस्कृति का प्रेम और गंभीर अध्ययन। नीचे जहाँ हम बैठे थे, अँगरेज़ी पुस्तकों से कितनी ही आल्मारियाँ भरी थीं। उनमें कितनी ही सबसे नई रचनायें थीं—मालूम होता है, जीवनियों के आप ख़ास प्रेमी हैं। वहाँ योरप—विशेष कर इँग्लैंड—के सैकड़ों राजनीतिज्ञों और सैनिकों की स्वरचित-पररचित जीवनियाँ हैं। थोड़ी देर बात हुई। हमने हस्तलिखित पुस्तकों की सूची देखकर कुछ पुस्तकें देखनी चाहीं, तुरन्त आ गईं। एक को फोटो लेने के लिए अपने साथ लिया (इस तालपत्र की पोथी में दसवीं सदी के अन्त के पंडितसिद्ध मैत्रीपाद की संस्कृत में जीवनी है)। फिर जेनरल साहब ने अपने ऊपर का पुस्तकालय देखने के लिए कहा। आल्मारियों की क़तार की क़तार है। दीवारों पर कितने ही सुन्दर चित्र लटके हैं। बैठक में कितने ही भारतीय चित्रकारों के बनाये मूल चित्र हैं। फिर वे अपने स्वाध्यायगृह में ले जाने

लगे। द्वार को उन्होंने नैपाली कारीगरों से ख़ास अपनी हिदायत के अनुसार बनवाया है। एक कपाट पर कृष्ण की मूर्ति उत्कीर्ण है, और दूसरे पर बुद्ध की। कहने लगे—मैं तो दोनो में एक समान भक्ति रखता हूँ। मैंने कहा- दोनों ही हिन्दू महापुरुष हैं। हमारे यहाँ बहुज्ञ लोग भी "हिन्दू और बौद्ध दोनों भाई" कहने की ग़लती करते हैं, किन्तु नैपाल में ऐसी ग़लती कोई नहीं कर सकता; क्योंकि वहाँ लोग जानते हैं कि हिन्दू-शब्द ब्राह्मणधर्मियों और बौद्धों दोनों के साझे का है। स्वाध्यायगृह में देखा—भूमि पर एक सुखासन बिछा हुआ है, और इधर-उधर बहुत-सी पुस्तकें रक्खी हुई हैं। बोले—कुर्सी की अपेक्षा इस आसन पर बैठकर अध्ययन करने में मुझे अधिक अनुकूलता मालूम होती है।

जब आप अपने संग्रह की मूर्तियों को दिखला रहे थे तब मैंने कहा—गत भूकम्प से खण्डित मूर्तियाँ जगह जगह धूप और वर्षा खा रही हैं उनमें सैकड़ों ऐसी हैं जिन्हें रखकर कोई भी म्यूज़ियम अभिमान कर सकता है। अच्छा हो यदि आप उनकी ओर ध्यान दें। उन्होंने बतलाया कि मैंने अपने यहाँ के म्यूज़ियम के लिए कुछ संग्रह कराई है।

चलते वक्त उन्होंने स्वयं अपना फोटो दिया, किन्तु मैं तो डिप्लोमेट जेनरल केसर शम्सेर की जगह स्वाध्यायशील केसर शम्सेर को चाहता था। अपने छोटे केमरे से फोटो तो खींचा, किन्तु सफलता नहीं हुई।

नैपाल में क्या दो हफ़्ते में हमारे ऐसों का काम बनने वाला है ? उसके लिए तो कम से कम चार मास चाहिये। लेकिन उधर हमें जल्दी पड़ी हुइ थी। विनयपिटक और दूसरी चार-पाँच पुस्तकों का छपवाना, लुम्बिनी-जेतवन आदि की यात्रा, और कितने ही मित्रों के आग्रह का पालन, और इन सबके लिए मार्च तक सिर्फ चार मास !

रास्ते के लिए राहदानी के अतिरिक्त तिब्बत से साथ लाई मूर्तियाँ और तालपोथियों के लिए एक ख़ास अनुज्ञापत्र की आवश्यकता थी। यह काम तो जेनरल केसर शम्सेर ने कर दिया। फिर हमारे साथ चलने वाले थे हमारे गृहपति साहु धर्ममान् के ज्येष्ठ पुत्र साहु त्रिरत्नमान्। उनकी यात्रा के लिए शुभ सायत पड़ रही थी दो दिसम्बर के ग्यारह बजे दिन को। हमारे लिए पूछी गई तब हमने कह दिया—भली सायत हो या बुरी हमारी यात्रा तो बाईस वर्ष पूर्व शुरू हो गई है।

३० नवम्बर को ज्वर आया। समझा पहले की भाँति पाँच-सात दिन पर आने वाला होगा। दूसरे दिन रात को खूब रहा। दो दिसम्बर को राजगुरु से विदा माँगने गये। कमज़ोरी का ख़याल कर उन्होंने दो घोड़े रास्ते के लिए दे दिये थे। ११ बजे उन्हीं के मोटर से पहाड़ की जड़ में थानकोट पहुंचे। शाम को फिर ज्वर आया, और पहले से भी कड़ा। इसी ज्वर और चार दिन के उपवास के साथ ५ दिसम्बर को पटना पहुंचे। वज़न चालीस पौंड घट गया था।

# परिशिष्ट

## *ल्हासा की ओर

खारू ला पार होने पर उतराई शुरू हुई, किन्तु यह उतराई उतनी कठिन नहीं है। प्रायः तीन चार मील उतरने पर कुछ घर मिले। यह घर विशेषकर टिकने के ही लिये हैं। दीवारें इनकी अनगढ़ पत्थरों से चिनी हैं। आगे मिट्टी काली है, इसलिये नदी का पानी भी काला मालूम होता है। आसपास के पर्वतों के शिखरों पर अब भी जहां-तहां वर्फ थी। अन्त में हमें लाखों वर्ष पूर्व पानी के प्रवाह से बनी मिट्टी में स्वाभाविक गुहाएं मिलीं। इसके वाद दूसरा डाक-खङ् था। पास के पहाड़ में जमीन में फैले धूप के छोटे-छोटे पौधे हैं। इनकी सूखी पत्तियों को कुछ और सुगन्धियों से मिलाकर भोटिया लोग धूप-बत्ती बनाते हैं। रास्ते में छोटे-छोटे पत्थर बिखरे हुए थे। उपत्यका भी ऐसी ही थी। मैदान धीरे-धीरे चौड़ा होता जाता था। मनुष्यों की एक-दो छोटी-छोटी वस्तियां भी मिलीं, जिनके बड़े-बड़े पत्थर के स्तूप तथा ध्वस्त-प्राय पत्थरों की दीवारें, ग्रामों की अवनति को प्रकट कर

---

* यह भाग "तिब्बत में सवा वर्ष" में छूट गया था।

रही थीं। कुछ और बढ़ने पर हमारी दृष्टि के फैलने के लिये विस्तृत अवकाश मिला। आगे दाहिनी ओर यह अवकाश और भी दूर तक फैला हुआ मिला। बांईं ओर पहाड़ की बाहीं पर, नङ्-चेर् का जोङ्, दिखाई पड़ा। कितनी ही इमारतें नयी हैं। तीन बजे के करीब हम नङ्-र्चे गांव में पहुँच गये।

गांव के बाहर हम लोगों ने डेरा दिया। और भी ऐसे कितने ही डेरे इधर-उधर पड़े हुए थे। हमारे सामने मीलों तक भूमि छोटी-छोटी घासोंसे ढँकी हुई थी, इसमें हजारों चमरियां, भेड़ें, खच्चर और गदहे चर रहे थे। हमारे साथियों ने भी खच्चरों परसे माल उतारकर उन्हें चरने के लिये छोड़ दिया। उन्होंने एक खच्चरके गलेका घुंघरू मुझे थमाया। मैंने उसे जमीनपर रख दिया, जिसपर सरदार आपेसे बाहर होगया। मालूम हुआ, घुंघरूओं को जमीन पर रख देनेसे आवाज कम हो जाती है। उसी दिन एक और गलती मुझसे हुई। छोलदारी के भीतर लकड़ी के प्याले रखे हुए थे, जिनमें चाय भरी हुई थी। गलतीसे मेरे 'छुपा' (चोगा) का नीचेका दामन प्यालेसे छू गया। सरदारने घी-मक्खन मिलाई चायको उठाकर फेंक दिया। भोटिया लोग छुपेके दामनसे खाने-पीनेकी चीजों के छू जाने से बहुत परहेज करते हैं। वह उचित भी है। भोटिया लोग यही नहीं कि आब-दस्त नहीं लेते,

बल्कि सूखे हुए पाखानेके ढेरमें भी छुपेका दामन फैलाकर बैठ जाते हैं। इसलिये दामनकी गंदगी साफ ही है।

नङर्-चे बहुत ठण्डी जगह है। समुद्रतल से चौदह-पन्द्रह हजार फीट ऊँची होगी। यहांके लोगोंकी मुख्य जीविका भेड़ और चमरी हैं। थोड़ी-थोड़ी खेती भी जहां-तहां होती है। इतनी ऊँचाई पर यहां "यम्-डो-छा" नामक महासरोवर है। लाखों वर्ष पूर्व यह सरोवर पहाड़ोंकी जड़तक फैला रहा होगा। किन्तु अब बहुत स्थानोंपर यह सूख गया है, जिसमें हरी-हरी छोटी घासें उगी हुई हैं। इस सरोवर-बीच में कई ऊँची पर्वतशृङ्खलाएं है। सरोवर का घेरा सौ मील से अधिक है। सरोवर का सिलसिला कहीं-कही पतली धार से मिला हुआ है। आस-पास की कितनी ही नदियां अपने जल को इसी में लाकर डालती हैं। यद्यपि इसका पानी बाहर नहीं निकलता, तो भी पानी मीठा है। किनारे-किनारे घूमने पर यह चक्कर खाती नदी-सा मालूम पड़ता है। नङर्-चेका ऊन अपनी नर्मी के लिये मशहूर है। जहाँ जितनी अधिक सर्दी पड़ती है, वहां का ऊन भी उतना ही मुलायम होता है। नङर्-चेके चुक-टूक् (बाल निकला हुआ कम्बल) को भोटिया लोग बहुत पसन्द करते हैं, क्योंकि वह बहुत ही नर्म और गर्म होता है। इसके नीचे पड़ जाने पर जाड़ा पास नहीं फटक सकता।

घास और खच्चरों की थकावट को देखकर खच्चरवालों ने

उस दिन भी यहीं रहना पसन्द किया। खच्चर तो चरने के लिये छोड़ दिये गये थे और लोग छङ् पीने में मस्त थे। भोटिया लोग छङ् और नाच के बड़े प्रेमी हैं। जुआ खेलने का जगह शराब का पूरा इन्तजाम रहता हैं। मेरे डेरे से थोड़ी दूर पर एक लदाखी मुस्लमान-का डेरा था। हैट-वैट लगाये पूरा साहब बना हुआ था। मेरे साथी ने कहा—यह ख-छे (मुसलमान) तुम्हारे फ-युल् (पिता के देश) का है न? मैंने कहा—हो सकता है। कभी उससे मुझे बात करने का मौका नहीं लगा। उसके पास पचास-साठ खच्चरों का माल था। कुछ लदाखी मुसलमान ल्हासा में भी बस गये हैं। यह लोग कलकत्ते से माल ले आते हैं। लदाख से आनेवाले भी रावल-पिण्डी आकर रेलपर चढ़ कलिम्पोङ् चले आते हैं। और वहाँ से इसी रास्ते ल्हासा जाते हैं। मुझे उससे बातचीत में पर्दा खुलने का डर न था, क्योंकि ऐसा होनेपर मैं समझा सकता था—"मेरा घर खुन्नू (बुंशहर) है। खुन्नू बहुत कम लोग जानते हैं, इसलिये मैं लदाख कहता हूं।" खुन्नू कहकर तो मैं खुन्नूवालों को भी धोखा दे सकता था। एक बार एक खुन्नू ही का आदमी मुझे ल्हासा में मिला। उसने पूछा—खुन्नूमें घर कहाँ है? मैंने कहा—सराहन के पास। उसने कहा—तो आप असल कनौर (खुन्नू) से बाहर के हैं। मैंने कहा—हमारा राजा तो एक ही है न? विशेष पूछनेपर मैंने कह दिया—छोटेपन से ही मैं घरसे बाहर निकल साधुओंके साथ फिरने लगा था।

१५ जुलाई (१९२९ ई०) को हम नङर्‌्चे से रवाना हुए। नङर्‌्चे ग्यांची से बासठ मील पर है। मीलके पत्थरोंको भी

देवताके एक छोटे से स्थानकी तरह घेरकर बनाया गया है। रास्ते के साथ साथ तारके खम्भे लगे हुए हैं। नङर्-चोके जोङ में डाकखाना और टेलीफोन है। तिब्बतमें तार का काम जानने वाले ज्यादा नहीं हैं, इसलिये तार सिर्फ ल्हासा ही में रखा गया है। कुछ आगे जाने पर कुछ कपड़े की छोलदारियां गड़ी हुई थीं, जिसके आगे अंग्रेजी वेश में ताम्रवर्ण के एक पुरुष घोड़े पर चढ़े आते दिखाई पड़े। पीछे इन सज्जन से मुझे ल्हासा में मिलने का अवसर मिला। यह ग्यांची के तार विभाग के सुपरवाइजर हैं। आजकल तार के खम्भे बदले जा रहे हैं, इसीलिये भोटिया गवर्नमेंट ने इन्हें इसके लिये मांग लिया था। रास्ता सरोवर के किनारे-किनारे था। एक कोनें में मुड़कर ऊँची दीवारोंवाला घर मिला। ऐसे उजाड़ पड़े हुए घर इस झीलके किनारे कई जगह मिलते हैं. वस्तियाँ भी कितनी ही उजाड़ हैं, कितनी ही आबाद। खेत सब खाली पड़े हैं, जिनकी मेड़ अब भी दिखाई देती हैं। दोपहरके करीब हमने झीलकी एक पतलीसी धाराको पार किया। यहीं हमें शी-ग-र्ची से आने वाला रास्ता भी मिल गया। उसी पतली धारको दूसरे पारसे परिक्रमा करते हुए हम फिर खुली झील पर आ गये। पहाड़ में कुछ जंगली गुलाब और करौंदे के छोटे-छोटे झाड़ दिखलाई पड़े। सूर्य की गर्मी सवेरे ही से आ जाने से यहाँ कुछ गर्म था, इसीलिये इन वनस्पतियों को यहाँ उगने की हिम्मत हुई। आगे हमें बहुत सी चमरियाँ लोहा, चावल, आदि माल लाद कर ले जाती दिखलाई पड़ीं। खच्चरों और घोड़ों को देखकर चमरियाँ स्वयं इधर-उधर हट जाती हैं। यहीं मुझे शं-कर से आया ल्हासावाला सौदागर मिल गया। उसने कहा—

शी-गर्ची से सुमतिप्रज्ञ हमारे साथ आ रहे हैं। मैंने कहा—"मैं तो तुम लोगोंसे आगे ही ल्हासा पहुँचूंगा। सुमति-प्रज्ञ को छु-शिङ्-श में मिलने के लिये कह देना। इस घाटी में मौसिम का कोई नियम नहीं है। थोड़ी देर धूप मिलेगी, फिर थोड़ी देर में बादल घिर आयेगा। अभी हवा शांत है, जरा देर में छोटे-छोटे पत्थरों का टुकड़ा उड़ने लगेगा। उस दिन हमें हवा से मुकाबिला नहीं करना पड़ा। तीन बजे के करीब हम सि-क्या गाँव में पहुंचे। सिर्फ दो-तीन घर हैं। घर भर की एक ही पत्नी होने से बस्तियों में घर की संख्या तो बढ़ नहीं सकती, हाँ सन्तान न हुई तो घर कम हो सकते हैं। इसके कारण मैं समझता हूं तिब्बत में बहुत सी जगहों में मनुष्य-संख्या कम हुई है। आजकल संसार के बड़े-बड़े अर्थ-शास्त्री जन-वृद्धि रोकने की चिन्ता में हैं, किन्तु तिब्बती लोगों ने कई सौ वर्ष पूर्व ही यह सवाल बहुपति-विवाहके रूप-हल कर दिया है।

सि-क्या में गेहूँ और नंगे जौके कुछ खेत थे, किन्तु अभी वह बहुत छोटे थे। और दूसरे-वृक्ष यहां न थे। यह गांव झीलसे कुछ ऊपर है। हमारे सर्दारका परिचय होने से यहाँ ठहरने के लिये सुभीता हो गया।

सवेरे ही सि-क्यासे चल पड़े, क्योंकि खन्-बा-ला पार करना था। हमें थोड़ी दूर फिर झील के किनारे किनारे चलना पड़ा। तब पहाड़ पर चढ़ने लगे। चढ़ाई कड़ी थी; किन्तु बहुत लम्बी न थी। दो घंटे में हम जोतपर पहुँच गये। यहां बर्फ कहीं न था। वर्षाका समय होने से घास कहीं-कहीं दिखाई पड़ती थी। मैं तो खच्चरपर आया था,

इसलिये जान न सका, किन्तु पैदल चलने वाले कहते थे—इसपर स-दुग् (मिट्टी का विष) है, और सांस रुक जाती है—अर्थात् यह समुद्रतल से अठारह हजार फीट ऊँचा है, और हवा बहुत हल्की है।

खंबाला से उतराई शुरू है। मैं खच्चर छोड़ पैदल ही उतरने लगा। उतराई में तो परिश्रम था नहीं, मैं औरोंसे आगे-आगे था। कई मील उतरने पर जूतेने पैर काट खाया। तब भी मैं चल ही रहा। रास्ते में पत्थर की दीवारों का टूटा-फूटा मोर्चा है। तिब्बत मिला। सरकार ने कहीं भी अपने जोतों की रक्षा के लिये सेना का इन्तजाम नहीं किया है। चीन के रहने तक बहुत सी जगहों पर इन्तजाम था। आखिर, देवताओं को वशमें कर लेने से उन्हें डर ही क्या है! अभी थोड़ी उतराई बाकी थी, कि जूता चलने नहीं देता था। लाचार फिर खच्चर पर चढ़ाना पड़ा। नालों में पानी की बहुत पतली धार बह रही थी। पहाड़ों पर जब बर्फ नहीं, तो मोटी धार कहां से आवे। दोपहर से पहले ही हम खम्-बा-बची गाँव में पहुँच गये। इससे थोड़ा ही नीचे ब्रह्मपुत्र की धार है। यहां काफी गर्मी थी। मटर, गेहूं, जौ, सभी फूले-फले थे। आलू भी तैयार था। कुछ खूबानी तथा दूसरे वृक्ष भी थे। रातको यहीं विश्राम करने के लिये ठहर गये।

॥ समाप्त ॥

# राहुलजीकी अन्य पुस्तकें !

| | | |
|---|---|---|
| १ | साम्यवाद ही क्यों ? | ॥) |
| २ | मेरी यूरप यात्रा | १॥=) |
| ३ | लंका | ॥।=) |
| ४ | बाईसवीं सदी | १) |
| ५ | तिब्बत में सवा वरस | ३।) |
| ६ | मेरी तिब्बत यात्रा | १॥) |
| ७ | बुद्धचर्य्या | ५) |
| ८ | धम्मपद | ॥) |
| ९ | मज्झिम निकाय | ६) |
| १० | विनय पिटक | ६) |
| ११ | तिब्बत में बौद्धधर्म | १॥) |
| १२ | अभिधर्मकोशः (संस्कृत) | ५) |
| १३ | विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः (चीनी से संस्कृत में) | .. |
| १४ | वादन्यायः (सटीक) (सपादित) | २) |
| १५ | वार्तिकालङ्कार (प्रमाणवार्तिक भाष्य) | २) |
| १६ | तिब्बती भाषाकी प्रथम पुस्तक (तिब्बती) | ।) |
| १७ | तिब्बती भाषा का व्याकरण (तिब्बती) | १) |
| १८ | कुरान सार | .. |
| १९ | पुरातत्त्व-निबन्धावली | .. |
| २० | दीर्घनिकाय | ६) |
| २१ | जापान | ३॥) |
| २२ | प्रमाणवार्त्तिकम् (सम्पूरितम्) | २) |
| २३ | प्रमाणवार्तिकं संवृत्ति (सम्पादितम्) | .. |
| २४ | खुद्दकनिकाय (पाली) | ६) |
| २५ | लदाख यात्रा | १) |
| २६ | शैतानकी आँख | १॥) |
| २७ | जादू का मुल्क | १॥) |
| २८ | सोने की ढाल | १॥) |
| २९ | विस्मृतिके गर्भमें | १॥) |
| ३० | ईरान-यात्रा | १॥) |

**छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग**



COVER ONLY PRINTED AT THE A. L. J. PRESS, ALLAHABAD